प्रकाशक :– शक्तिमां प्रकाशन
ई–२६ कविनगर गाजियाबाद (उ० प्र०)

लेखिका
–o पुष्पा वती खेतान o–

संस्करण:— प्रथम

प्रकाशन तिथि :— नवम्बर १६७० ई०

मुद्रक
विवेक मुद्रणालय,
गाजियाबाद।

समर्पित

देव-तुल्य अपने परम आदरणीय पति को, जिनके चरणों में मेरी असीम निष्ठा है,

—पुष्पावती 'खेतान



लेखिका परिचय,

जन्म, कानपुर, २२ नवम्बर १६१६

श्री मती पुष्पा खेतान गाजियाबाद के प्रमुख उद्योगपति श्री तुलसी प्रसाद खेतान की धर्म पत्नी हैं। प्रारम्भ से ही आपकी रूचि समाज-सेवा विशेपकर नारी जाती के उत्थान में रही है। अपनी विदेश—यात्राओं में आपने विदेशी महिलाओं की स्थिति को भी देखा, समझा। प्रस्तुत पुस्तक लिखने का भी उनका आशय यही है कि नारी—चरित्र को सम्बल मिले।

—प्रकाशिका

विषय सूची

भूमिका

नारी आधार शक्ति है—शक्ति का अवतार है। भारतीय ऋषि-मुनियों ने इस तथ्य को स्वीकारा है। भारतीय वाङ्मय नारी की उपोदयता कर्मठता, कर्मशीलता, धर्म-शीलता और कार्य-कुशलता तथा कौशल के साँगोपाँग वर्णनों से भरपूर है।

नारी की महानता का सबसे पुष्ट प्रमाण वेद-वेदांतों के वर्णन तो है ही, साथ ही उनके रचियताओं की भावनाएं भी हैं। जिन्होने देवताओं और अवतारों के नामों से पहले नारियों का नाम रखना ही श्रेयस्कर समझा। श्री रामचन्द्र जी से पहले सीता जी नाम तथा श्री कृष्ण से पहले राधा जी का नाम उपयुक्त कथन के प्रबल प्रमाण हैं।

अतीतकाल में नारी ने अपना यह गौरव यूं ही प्राप्त नहीं प्राप्त कर लिया था। अपने इस गौरव के लिये उसने तप किया, त्याग किया है, और वह भी इतना कि जीवन तक का बलिदान उसे करना पड़ा है।

नारियों ने समाज मे विरक्त होकर अथवा सन्यास लेकर ही श्रेय पर्याप्त नहीं किया, अपितु उन्होंने साधारण संसारी नारी की भाँति जीवन यापन भी किया और अपने चरित्र बल से चरित्र की सीमा के उत्कर्ष पर पहुंची।

कालान्तर में उनका उत्सर्ग चरम सीमा पर पहुंचा। वह भी यहां तक पहुंचा कि पतिव्रता-धर्म की पवित्रता को सार्थक करने के लिये नारियाँ पति के साथ सती होती रहीं। हमारे देश मे यह परिपाटी मुसलमानों के भारत आने तक रही।

राजस्थान की चप्पा-चप्पा भूमि सतियों की समाधियाँ और राख से

पवित्र है यह सब पतिव्रत धर्म की महानता के कारण ही संभव हुआ है। उसी पतिव्रत धर्म ह्रास के कारण ही नहीं, अपितु समस्त भारतीय समाज की दुर्दशा होने लगी।

नारी अपने कर्तव्यपालन से विमुख हो गयी। पतिव्रत धर्म में उनकी आस्था डिगने लगी। ऐसा क्यों हुआ इसके विभिन्न कारण हो सकते हैं। परन्तु प्रश्न यह है कि क्या हम उन कारणों की मीमाँसा में ही उलझे रहें या अपने प्राचीन गौरव को पुनः प्राप्त करें क्या नारी केवल दर्शनी हुण्डी-मात्र रहे, अपितु गौरव शाली नारी का जीवन यापन करें।

प्रस्तुत पुस्तक लिखने का भी मेरा यही अभिप्राय: है कि नारी अपने अतीत के गौरव को पुन: प्राप्त करें। उनमें कर्तव्य की भावना जगे। अपने पतिव्रत-धर्म के प्राचीन गौरव को पुन: प्राप्त करें। इसी में देश का कल्याण ही नहीं विशव को भी लाभ होगा और तभी इस छोटी सी पुस्तक की सार्थकता भी है शक्तिमाँ की सम्पादिक सरोज शीतल ने इस पुस्तक को लिखने में मुझे काफी सहयोग दिया जिसके लिये मैं उनकी आभारी हूं धन्यवाद,

पुष्पा वती खेतान

खेतान भवन,
माडल टाऊन,
गाजियाबाद।

विषय प्रवेश

नारी समाज का अभिन्न अंग है। भारतीय वाङ्गमय में नारी के महत्व का विषद वर्णन ऋषियों, मुनियों और समाज शास्त्रियों ने किया है। प्रत्येक युग में धर्म और संस्कृति की वाहिका नारी ही मानी जाती रही हैं। देव-समुदाय में भी देवियों को ऋषि-मुनियों ने प्रथम स्थान प्रदान किया है। भारत की निराक्षरा नारी तक अपनी भारतीय संस्कृति की सूत्रधारिणी आज तक बनी हुई है। भारतीय नारी ने वस्तुतः यह महत्ता अपने असीम त्याग अपने पतिव्रत-धर्म, अपनी दया और दान-शीलता, सेवा भाव की अनुकम्पा तथा अपने पति, सास स्वसुर और परिवार में अगाध श्रद्धा के कारण प्राप्त की है। इसीलिए स्मृतिकार मनु ने लिखा है: "यत्र नार्यस्तु पूजन्यते रमन्ते तत्र देवता "। अर्थात् जहां नारियों का मान होता है, पूजा होती है, उस घर में देवता वास करते हैं। 'काठक संहिता' में नारी को उच्च मार्मिक भावना की खान माना गया है। वह परिवार के प्रत्येक व्यक्ति को प्रसन्न रखती है। 'अथर्व वेद' में "सत्येनोत्तभित्ता भूमि": कह कर मातृ-शक्ति को सत्याचरण की अर्थात् धर्म की प्रतीक कहा है। 'विमन्यु' कह कर उसे कभी भी क्रोध न करने वाली कहा है। वह जल के तेज अर्थात शीतलता और शांति के गुण से युक्त है। 'शम्या' अर्थात शांति दायनी है। 'सुशेवा' अर्थात सब की सेवा करने वाली है। 'संवननम्' वह भक्ति, श्रद्धा, प्रेम, सेवा और सनामता की प्रतीक है।

उसे शुद्ध, पवित्र, निष्कलंक, आचार-व्यवहार के प्रकाश से सुशोभित, प्रातःकाल के समान हृदय को पवित्र करने वाली, लौकिक, कुटिल, अधार्मिक प्रसंगों और दुराचारों से सर्वथा अनभिज्ञ, निष्पाप, उत्तम यश अथवा सुनाम धन्य, नित्य उत्तम कर्म करने वाली होने की प्रेरणा प्रदान की है। वेदानुसार वह प्रिय वादिनी है। अपनी कोमल भावना तथा मधुर वाणी से घर के सदस्यों को प्रसन्न रखती है और इन्हीं गुणों से घर में प्रकाशित होती है। वैदिक साहित्य नारी में उपर्युक्त गुणों का उल्लेख करके उस में इन गुणों का विशेष रूप से विकास चाहता है। उसके यही गुण घर को स्वर्ग बनाते हैं। उसकी यही कामना है कि स्त्रियां कष्टों के समय रोयें नहीं, इन्हें निरोग रखा जाय। घर का प्रत्येक सदस्य उसके थोड़े से भी कष्ट को देख कर, कष्ट-निवारण करने के प्रयत्न में लीन हो जाय। यही वेद का कथन है। आगे चलकर वेदों में, विभिन्न रूपों में उसके कल्याण और निरोग की कामना की गई है।

समस्त भारतीय वाङ्मय नारी के इन्हीं गुणों की प्रशंसा करते हुए पुरुष को परामर्श दिया गया है कि वे समस्त परिवार के कल्याण के लिए नारी का सम्मान करें। जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, नारी-सम्मान की प्रशंसा वेदाचार्यों ने केवलमात्र उनको प्रसन्न करने के लिये ही नहीं की, अपितु उनके आत्मजित होने के कारण की।

वर्तमान समय में भी जब कि पश्चिमी सभ्यता का प्रचार-प्रसार देश में अत्यधिक हो चुका है, ऐसी नारियां इस देश में मौजूद हैं जिन्होंने निरन्तर अपने जीवन को अग्नि-परीक्षा में न जाने कितनी बार झोंका परन्तु असीम धैर्य को धारण किए रहीं और कभी भी विवेक हीन नहीं हुईं। वस्तुतः ऐसी ही अग्नि परीक्षाएं नारी जीवन में न जाने कितनी बार आती हैं और यह परीक्षाएं निर्धन परिवारों में कम, धनिक परिवारों में अधिक आती हैं, किन्तु जो नारी इन परिक्षाओं से विचलित हो जाती है, वह स्वयं भी नष्ट हो जाती है और परिवार भी नष्ट प्रायः हो जाता है।

परीक्षाओं के विविध रूप

नारी जीवन की परीक्षाओं के विभिन्न रूप होते हैं। परन्तु अधिकांशत: इन रूपों का केन्द्र विन्दु परिवार होता है। परिवार में उसका प्रथम सम्बन्ध उसके पति से होता है। अत: यदि केन्द्र के मुख्य पुरुष—पति को ही लें, तब कभी-कभी यह पत्नी की अग्नि परीक्षा का सबसे प्रबल कारण बन जाता है। उस समय नारी की सभी युक्तियों, धैर्य और विवेक की परीक्षा हो जाती हैं। यदि उस संकट काल में भी नारी विवेक नहीं खोती और अपनी आत्मा में निर्बलता नहीं आने देती तो उस भंवर-जाल से वह स्वयं भी निकल जाती है और पति पहेली भी स्वत: ही सुलझ जाती है।

उदाहरण के लिए कलकत्ता की एक ऐसी ही महान् विदुषी महिला के चरित्र का मूल्यांकन कीजिए जिसने अपने जीवन में न जाने कितनी बार ऐसी ही अग्नि परीक्षाएं दीं, किन्तु न कभी धैर्य से हाथ धोया और न कभी विवेक हीनता को ही अपने पास फटकने दिया। अपनी आत्मशलाघा, आत्म प्रवंचना और पति में अगाध श्रद्धा रखते हुए अपने जीवन को कभी खिन्न नहीं बनाया। अन्ततोगत्वा परीक्षा में सफल हुई, आत्मशलाघा और अगाध विश्वास की विजय हुई और उसके पतिव्रत-धर्म का ही यह परिणाम निकला कि उस परिवार की उत्तरोत्तर उन्नति होती चली गई और हो रही है।

कितना असीम धैर्य परमात्मा ने इस महान् नारी को प्रदान किया था, यह वर्तमान काल में कल्पना से परे की वस्तु है, परन्तु है सत्य—कठोर सत्य !

जिस नारी ने पति के प्रथम दर्शन ही एक उपेक्षित जीवन-संगी के रूप में किये हों, उसके हृदय पर पति के प्रति क्या प्रतिक्रिया हो सकती है ? जिस नारी ने मद्य के नशे में धुत्त पति की रात-रात भर जग कर सेवा की हो, उस पत्नी के हृदय का मूल्यांकन आज का कौन साहित्यकार कर सकता

है ? परन्तु धन्य है वह महिला। यदि आज गांधी जी होते तो उसके जीवन-चरित्र का अवलोकन कर वे भी अपने को धन्य मानते कि इस अवसर वादी-युग में देश में ऐसी भी एक महिला मौजूद है, जिसने मेरे इस सिद्धान्त को वास्तविक रूप में सार्थक कर दिया है कि व्यक्ति से घृणा मत करो बुराई से करो। वस्तुतः उस महिला ने अपने जीवन को इसी आदर्श पर ढालना प्रारम्भ किया। पति के अन्दर आयी या बुरे साथियों द्वारा लायी गयी, बुराई से उसने घृणा की, किन्तु पति को देवता ही मानकर बुराइयों के निराकरण में लगी रही।

इन निराकरणों के कारण ही उसे बार-बार कड़ी परीक्षाओं का सामना इसलिए भी करना पड़ता था कि एक तो पति की चरित्र-हीनता की पराकाष्ठा और दूसरे इस दोष के कारण दुखी माता पिता को सांत्वना देना; क्योंकि ऐसी विषम परिस्थिति में जब पुत्र कुमार्गी हो जाता है, तब माता-पिता का ध्यान पुत्र से हट कर, पुत्र-वधु पर केन्द्रित हो जाता है, क्योंकि उस दशा में परिवार की सुख-शान्ति का उत्तरदायित्व वस्तुतः उनकी पुत्र-वधु पर ही होता है। वह जैसा चाहे परिवार के साथ व्यवहार कर सकती है। वह अपने असीम धैर्य और आत्म शक्ति द्वारा पति को सुमार्ग पर लाकर परिवार को सुख-समृद्धि की ओर भी ले जा सकती है और विवेकहीन होकर विनाश के गर्त में भी पटक सकती है।

—०—

परीक्षाओं के विविध रूप

अतीत काल में नारी ने अपना यह गौरव यूं हीं प्राप्त नहीं किया अपने गौरव के लिये त्याग किया तप किया।

हमारे धार्मिक ग्रन्थों मे सीता, सति सावित्री, गांधारी, मैत्रेया, गार्गी और और शर्मिष्ठा तथा उर्मिला जैसी पतिव्रता नारियों के कथानक आते हैं, जिन्होंने देश की संस्कृति को संबल किया है, क्योंकि धार्मिक क्रियाओं का प्रभाव समस्त समाज के व्यवहार, विश्वास, दर्शन कला साहित्य पर पड़ता है और तभी किसी देश की संस्कृति का निर्माण होता है। भारत की उस प्रखर संस्कृति की, उन्नायिका-रक्षिता नारी को भी हमारे धर्म-ग्रन्थों में इसीलिए सराहा गया है कि धर्म और संस्कृति पर आचरण नारी ने दिखावा मात्र से नही किया, अपितु इस धर्म और संस्कृति को आत्मसात कर लिया। यही कारण है कि अब तक भी जब कि भारतीय संस्कृति पर पश्चिम की संस्कृति की शृंखलाओं के निरन्तर आघात होते हुए भी इस देश की संस्कृति नारियों के कारण अब तक सुरक्षित रहती चली आयी। इन आक्रामक संस्कृतियों में भौतिकवाद, धर्म - निरपेक्षता, जनतंत्र अथवा जनवाद और समाजवाद जैसी उच्छृंखल संस्कृतिया भी थीं।

इन सास्कृतिक आक्रमणों का मुकाबला अधिकांश में नारी-शक्ति के द्वारा ही हुआ है। यही कारण था कि हमारे धर्माचार्यो ने भारतीय संस्कृति की वाहिका नारी को बनाया था। घूप देव मण्डली में नारी शक्ति–रुपावनी दुर्गा संस्कृति की संरक्षिका ही नहीं, समस्त मानव-जीवन की प्रवृत्तियों की व्यवस्थापिका मानी गयीं। इसका परिणाम यह हुआ कि देश अपनी दासता के अंधकार काल में अपने नारी समाज के कारण ही अपनी सांस्कृतिक टेक को कायम रख सका।

नारी-जीवन में नये मोड़

ऊपर जिन विभिन्न युगीन महान् महिलाओं का स्मरण किया गया है, उनके उस काल में और वर्तमान-काल में देश में बहुत अन्तर आ चुका है। समस्त आचार-विचार, खान-पान, रहन-सहन बदल चुका है। वैचारिकता के सम्बल शिथिल हो चुके हैं। मानवीय जीवन व्यामोह के इन्द्रजाल में उलझा हुआ है। अधिकार, पद-लोलुपता और कृत्रिमता जीवन में इतना घर कर

गई है कि वास्तविकता क्या है, उसका मूल्यांकन करना आसान नहीं रहा। मनुष्य का जीवन-विलासी जीवन बन चुका है। यही कृत्रिमता और विलासिता समाज को निरन्तर खोखला किये जा रही हैं। धर्म और संस्कृति को इसी कारण ठेस लग रही है। इन्हीं सब कारणों ने मिल कर नारी को जीवन के नये-नये मोड़ों पर लाकर खड़ा कर दिया है।

उदाहरण के लिए पिछले पृष्ठों में कलकत्ता की जिस विदुषी महिला की तपस्यारत दिनचर्या का वर्णन किया गया, उन्हें जीवन के ऐसे मोड़ों से अनेकों बार इसलिए गुजारना पड़ा कि उनके पति के लिए विलासिता के सब साधन सुलभ थे। अंतर केवला इतना था कि भारतीय संस्कृति में पले होने के कारण पत्नी के सामने अपने पापों को स्वीकार लेते थे और कभी-कभी अपनी-जीवन शृंखला पर विचार भी करते थे। फिर भी धन की विपुलता, चरित्रहीन साथियों का सम्पर्क और जवानी का नशा पुनः उधर ही घसीट ले जाता था जहां अपना और दूसरों का जीवन नष्ट होता है। नष्ट किया जाता हैं।

ऐसी स्थिति में केवल एक व्यक्ति के कारण ही समस्त परिवार बिगड़ता है; क्योंकि ऐसे कुकृत्तियों का प्रभाव देशव्यापी होता हैं, इसलिए कि एक बुराई दूसरी बुराई को जन्म देती है और झूठ को छुपाने के लिए दस झूठ बोले जाते हैं।

नारी जीवन का ऐसा ही मोड़ इतना भयानक होता है कि कोई विरली नारी ही इस मोड़ को पार कर पाती है, क्योंकि इसे अगाध धैर्यवान बनना पड़ता है, आत्मशक्ति और विश्वास भावना प्रबल रखनी पड़ती है, सबसे पहले उसे स्वयं अपने को संभालना पड़ता है। उसके पश्चात परिवार के मुख्य केन्द्र अपने पति को इस प्रकार संभालना पड़ता है कि समाज में भी उसकी प्रतिष्ठा को ठेस न लगे। उस के अन्दर अपनी ओर से इतनी मात्रा में घृणा न घोल दी जाय कि वह स्वयं ही अपने जीवन को नष्ट करने के लिए उतारू न हो जाय। अपने से भी घृणा न करने लगे इसके लिए यदि घर में नौकर-चाकर हैं तो उनकी भावनाओं को भी बदलना पड़ता है, ताकि उसके

प्रति प्रतिष्ठा और सम्मान उन लोगों की दृष्टि में गिरने न पाये। अतः अनेकों बार उनकी शंकाओं और जिज्ञासाओं का समाधान करना पड़ता है। जैसा कि इस महिला को अनेको बार करना पड़ा। पता नहीं कितनी बार अपने मालिक की शंका भरी शिकायतें उन्होंने अपनी मालकिन से कीं। वस्तुतः इन शिकायतों का आशय केवल उनका यह था कि अपनी मालकिन का ध्यान, उनके पति के चरित्र क ओर आकृष्ट किया जा सके। वह बेचारे क्या जानते थे कि प्रत्येक पत्नि पति की नस-नस से परिचित होती है।

इस समय उसकी स्थिति विषम इसलिए हो जाती है कि घरेलू कर्मचारी प्रायः अशिक्षित होते हैं, उनमें सोचने विचारने की शक्ति की न्यूनतम होती है। अतः उनकी धारणाओं को बदलना जो अपने पति ही नहीं, अपने प्रति भी होती है, आसान नहीं।

ऊपर जिस मालकिन का वर्णन इस सन्दर्भ में किया गया है, उनके सामने भी यह समस्या अनेकों वार आयी। कोई भी साधारण नारी या विवेकहीन नारी इस स्थिति में अपने पति की और भी दो बुराइयां नौकरों से करके सहानुभूति अर्जित करने का प्रयत्न करती। परन्तु वह सहानुभूति बहुत महंगी स्वयं उसके लिए इसलिए भी हो जाती क्योंकि उन घरेलू कर्मचारियों की दृष्टि में स्वयं उस महिला के प्रति उतना सम्मान और भय कदाचित न रह पाता, जितना रह रहा था, रह रहा है, और परिवार की प्रतिष्ठा के लिए रहना अनिवार्य था। कभी कभी घर के भेद नौकरों पर प्रकट हो जाने की भूल एक भयंकर काण्ड की जन्मदातृ बन जाती है। इसलिए यह गुण प्रत्येक नारी मे होना अनिवार्य है कि वह परिवार के किसी भी भेद को पर-पुरुष या पर-स्त्री के सामने विषम से विषम स्थिती में भी प्रकट न करें, क्योंकि कोई भी बुराई अथवा मानव के अन्दर उत्पन्न हुई कुटेव एक रोग के समान है, वह रोग छूत का भी हो सकता है अर्थात् कुसंगति के कारण और अन्य किसी कारण से भी उत्पन्न हो सकता है, परन्तु प्रत्येक रोग की औषधि है उपाय है। उसका प्रचार करना या उस रोगी को किसी प्रकार से अप्रभावित या त्रस्त करना—रोग का उपाय नहीं। यह तो रोगी को स्वास्थय लाभ करने

के स्थान पर मृत्यु की ओर ढकेलना जैसा हो जाता है।

भारत की प्राचीन नारियों की प्रशंसा क्यों की जाती है, उनकी कीर्ति देश देशान्तर में अमर क्यों है ? इसलिये कि उन्होंने विषम परिस्थितियों में भी पति में अगाध श्रध्दा रखी। इतिहासों में जितने ऐसी महिलाओं ने संस्मरण उल्लखित हुए हैं, वे त्यागमयी महिलाएं थीं। उनके त्याग के कारण वह स्वयं भी इस नश्वर संसार में अमर हो गयीं और देश को भी अमर कर दिया।

पश्चिमी सभ्यता के अनुसार यदि भारत में भी विवाह जीवन का एक स्वच्छ अनिवार्य संस्कार न होकर एक समझौता होता तब क्या कोई नारी इतने त्याग का परिचय दे सकती थी। उदाहरण के लिये यूरोप के किसी भी इतिहास में इतने महान् त्याग का उदाहरण नहीं मिलता, जितना त्याग भारतीय महिलाओं ने किया है ; क्योंकि समझौता द्वारा प्राप्त की हुई पत्नी और जीवन के संस्कार द्वारा प्राप्त अर्ध्दांग्नि में उतना ही अन्तर है जितना सच्चरित्रता और चरित्रहीनता में और चरित्रहीनता का इतिहास में कोई स्थान नहीं होता।

नारी-समाज के नये मोड़ों में एक मोड़ वर्तमान साहित्यकारों ने उसे दिखाया है और उनकी अभिलाषा है कि नारी अपना त्याग-तपस्या भरा मार्ग बदल कर उनके दिखाये नये मोड़ पर मुड़ जाय। उनका कहना है कि नारी सदियों से समाज द्वारा संतप्त रही है। मानव द्वारा उपेक्षित रही है। अतः जन्म से अभिशप्त और जीवन से संतप्त नारी को समाज ने कभी ऐसा अधिकार प्रदान नहीं किया जो उस पर लादे गये बन्धनों को काट सके और शृंखलाओं को तोड़कर स्वच्छन्द जीवन व्यतीत कर सके।

संभवतः उनका तात्पर्य यही है कि यूरोप की भांति कर्म-क्षेत्र और आर्थिक-क्षेत्र में नारी स्वतन्त्र हो, जब कि यूरोप के पतन की पराकाष्ठा को यह लोग स्वयं देख रहे हैं और यह लोग ही नहीं, अपितु वहां का नारी और पुरुष समाज अपनी इन स्वच्छंदताओं और उच्छृंखलताओं को बदलने के लिये छटपटा रहा है।

भारत का एक गरीब से गरीब व्यक्ति भी अपनी पत्नी का मान करता है। उससे डरता भी है। उसके सामने किसी प्रकार के दुराचरण का साहस नहीं करता। वह उसको यथा शक्ति सम्मान देता है कि उसे कष्ट न हो। वह कुछ अच्छा पहन सके। वह अच्छी तरहा रह सके। अभिप्राय: यह है कि वह नारी के समस्त जीवन का भार अपने ऊपर इसलिये मान कर चलता है कि वह वैवाहिक संस्कार द्वारा उसे प्रदान की गयी है और उसके शरीर पर—सम्पूर्ण शरीर पर उसका अधिकार है। यदि नारी स्वतंत्रता पूर्वक जिसका आशय उच्छृंखलता पूर्वक जीना ही समझना चाहिए, जीना पसंन्द करती है तब उसकी गणना वीरांगनाओं में तो नहीं अपितु वीरांगनाओं में ही हो सकती है और जीवन की सांध्यवेला में उस स्वतंत्रता-मयी नारी का क्या होगा, क्या बनेगा, उसका उत्तर संभवत: वर्तमान साहित्कार न दे सकेगा। अलबत्ता अस्पताल की ओर संकेत अवश्य कर देगा।

ऐसे लोग यह कल्पना न जाने क्यों नहीं कर पाते कि उस समय क्या व्यवस्थित समाज देश में रह सकता है और यदि रह सकता होता तो विवाह संस्कार की आवश्यकता ही क्यों अनुभव की गयी। एक समय तो निश्चय ही पशु-प्रथा होगी। उसी पशु-प्रथा का अवलम्बन करके यूरोप प्रथा जन्मी होगी। उसे ही कुछ लोग भारत में भी देखना चाहते हैं, ताकि त्याग, तपस्या, परमार्थ और चरित्र जैसे पवित्र शब्द जिन्होंने देश का गौरव बढ़ाया है और जिनके लिये विदेशी जनता लालायित रहती है। उनका सर्वथा लोप हो जाय। वर्तमान में नारी पुरुष की गतिविधियों का साथ न देकर पूर्णत: स्वच्छन्द बन जाय। उस समय पूर्ण स्वच्छन्द नारी और पूर्ण स्वतंत्र पुरुष के कारण देश और समाज का क्या रूप होगा। उस समाज में न कोई किसी का पति और न कोई किसी की पत्नी, भग्नि, माता, भाभी, दादी या नानी होगी। एक मात्र नव यौवना और होगी बाद मे एक मात्र जीवन भार को ढोने वाली बुढ़िया। जिस बुढ़िया ने समाज की रुढ़ियों को, मान्यताओं को अपने यौवन काल में ठुकराया होगा और जो अपने जीवन के विषाक्त अनुभव यत्र तत्र सुनाती होगी। उसके उस जीवन से समाज का क्या सम्बन्ध होगा ? क्या उस समय का पुरुष समाज उसके उस समय के जीवन से सहानुभूति रख

सकेगा अथवा उस समय का स्वच्छन्द नारी समाज उसकी सेवा के लिऐ आगे बढ़ सकेगा। कहीं भी और कभी कभी ऐसा होता क्या देखा गया है ?

ऐसे ही लेखकों का यह भी कहना है कि वैदिक और उत्तर वैदिक काल में मनोविज्ञान के ज्ञाता पुरुष ने नारी प्रसंशा में साहित्य सृजन इसलिऐ किया कि वह नारी के अन्दर व्याप्त दया, क्षमा तथा त्याग और शान्ति सुलभ प्रवृत्तियों का सदा शोषण करता रहे। इसलिए वह उन्हें पूजा और आदर का पात्र लिखता रहा। उनका इस बारे में शायद आशय यह है कि पहले तो नारी के अन्दर उपरोक्त गुण नहीं होने चाहिऐ थे और यदि थे भी तो पुरुष को उन गुणों की पूजा नहीं करनी चाहिए थी और न नारी को आदर और सम्मान प्रदान करना चाहिऐ था। ऐसे लोग यह भूल जाते हैं कि सम्मान, सम्मान कराता है। यदि नारियों के अन्दर उपरोक्त गुण नहीं होते तब शायद उस समय का पुरुष भी सम्मान न करता और आज के पुरुष की तो बात ही अलग है।

आज के अधिकांश लेखक अवश्य गिर गये हैं इतने गिर गये हैं कि वह किसी भले परिवार में बैठाने लायक तक नहीं। अनेकों लेखक और कथित मूर्धन्य सम्पादकों तक के इतिहास इतने काले हैं कि कल्पना से परे और उनके संभवता उनके भाई-बन्ध ही नारी को आज पतन की राह पर आदर्श हीनता के मोड़ पर लेजाना चाहते हैं। दो श्रीमतियों की पुस्तक मेरे सामने पड़ी हैं। लेखिका हैं और उन्होंने भी यही नारी स्वतंत्रता का रोना रोया है। लेखिका भी हैं और अध्यापिका भी है और आश्चर्य यह है कि नाम के आगे श्रीमती, शब्द अब भी चिपकाती है। यह हो सकता है कि वह पति की दासी न रहकर एक स्वच्छन्द रमणी का जीवन व्यतीत कर कर रही हों और यह भी हो सकता है कि यह अनमोल बोल दूसरी महिलाओं के गले में उतारने के लिए लिखती हों, बहर हाल ऐसा साहित्य लिखने से पहले प्रत्येक महिला का तो कम से कम यह कर्तव्य हो जाता है कि वह अपनी कथनी-करनी में अन्तर न करके अपनी विचारधारा को अपने जीवन का अंग का कर क्रियात्मक रूप से दूसरी महिलाओं के सामने अपना उदाहरण प्रस्तुत करे।

गार्गी, सुलभा कोषा, विश्ववारा और मैत्रेयी के बारे में कहा जाता है कि उन्होंने सामान्य नारी की शृंखलाएं तोड़ी। उनकी सूझ बूझ किसी भी पुरूष से कम नहीं थी ठीक है उपरोक्त महिलाऐं महान विद्वान थीं। भारतीय वाङ्मय में उनका स्थान आदर पूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया गया है। परन्तु उन्होंने मर्यादा क्या तोड़ी—यह लेखिका ने नहीं बताया क्या उन्होंने कोई कार्य समाज को गिरने वाला या कलंकित करने वाला किया। दूसरी बात यह है कि क्या उन्हें शिक्षा पुरुष समाज ने नहीं दी अथवा उस समय भी गर्ल्स कालिज खुले हुए थे ? तीसरी बात यह है कि वह नारियाँ तपस्वी थीं, विद्वान थीं। अतः बार—बार उनका स्मरण सभी करते हैं। बार—बार ग्रन्थों से पृष्ठों में युगों युगों से सुशोभित होती जा रही हैं। किन्तु क्या किसी स्वच्छन्द भार्या नारी का भी कहीं वर्णन आता है अथवा क्या उपर्युक्त महिला रत्नों ने कभी यह प्रमुख प्रचार किया है कि हम अथवा देश का नारी समाज मस्त है—प्रसवों द्वारा पीड़ित है उसे स्वच्छन्द जीवन बिताना चाहिए। क्या कभी उन्होंने देश के स्मृतिकारों की इसके लिए अभिलाषा की है कि वे नारी महिमा का गुण—गान उसे दासता में बांधने के लिए कर रहे हैं। तब वर्तमान लेखक और लेखिकाओं ने विदेशी लेखकों की पगडण्डी पर चलना प्रारम्भ कैसे कर दिया। अन्यथा उन्होंने यह अनुसंधान किस आधार पर किया कि वैदिक और उत्तर वैदिक काल में नारी गुणों की प्रशँसा उसे दासी बनाये रखने के लिए की जाती थी। आज भी अच्छा कार्य करने के लिए पिता पुत्र की, स्वामी सेवक की प्रशंसा करता है। यही तक नहीं असम्बद्ध लोग भी करते हैं तब इसका क्या अर्थ लगाया जाय ? क्या उन प्रशंसकों की नियत पर सन्देह किया जाय।

उदाहरण के लिए सीता, सीता क्यों बनी ? सीता को इतनी मान्यता क्यों संसार में प्रस्तुत हुई। रामचन्द्र जी ने सीता के चरित्र का विज्ञापन तो देश देशान्तर में नहीं किया था ? राम के साथ वन जाना मात्र ही सीता की कीर्ति का कारण बन गया था, अपितु इससे भी असीम त्याग का परिचय सीता ने उस समय दिया था जब राम ने सीता से कहा था कि लोकमर्यादा और लोक-तन्त्र की रक्षा के नाम पर तुम्हें वन जाने के लिए कहने आया हूं। उस समय सीता ने अपने पति के सम्मान की रक्षा की, अपने मान की रक्षा की और

अपने जीवन के असीम त्याग से देश के जनतंत्र की रक्षा की। सीता का वह असीम त्याग उसे सदैव के लिए अमर कर गया। देश की नारियों के त्याग का गौरव का प्रतीक वन गया। सीता का सात या इस संसार में कोई भी देहधारी अमर नहीं है - अमर नहीं रहेगा। यदि कुछ अमर रह सकता है तो उसका त्याग और तपस्या अथवा जीवन का शुद्धाचरण ही अमर रह सकता है। जो दूसरों के लिए प्रेरणादायक हो—अपकरणीय हो वही सीता ने किया भी। आज उसी सीता का गुणगान नित्य प्रति लाखों—करोडों कंठों द्वारा होता है। आदि मानव और श्रद्धा की कला में भी श्रद्धा अपने त्याग और सहिष्णुता तथा असीम धैर्य के कारण ही संसार की श्रद्धा का पात्र वनी।

यह सव घटनायें अतीत की हैं। वर्तमान में भी ऐसी नारियां इस देश में हैं। जिनका चरित्र अत्यन्त उज्जवल रहा, धैर्य असीम रहा विषमताओं को भी जिन्होंने सम माना, परन्तु विवेकहीनता को कभी पास भटकने तक न दिया। क्या ऐसी स्वच्छन्दमयी वन जाना चाहिए था। यदि वह वर्तमान साहित्यकारों के अनुसार स्वच्छन्दमयी वन जाती तव वह आंशिक रूप से अपने पति से प्रतिशोध तो ले सकती थी। परन्तु वह प्रतिशोध न देश और समाज के लिए लाभकारी होता और न मानव जीवन की प्रेरणा के अनुरूप होता। साथ ही उसका जो परिणाम निकलता वह अत्यन्त असुन्दर होता। सुन्दर हुआ उसका त्याग पति में असीम विश्वास और श्रद्धा। उस सरल सात्विक हृदय ने दूसरे कुटिल हृदय को भी सरल वना दिया। समस्त जीवन धारा को बदल दिया। ठीक उसी तरह जिस तरह एक कुशल चिकित्सक अपने रोगी का पहले रोग दूर करता है पश्चात उसकी रोग जनित दुर्वलता को दूर करता है। इसलिऐ इन नये मोड़ों पर जिन्हें हमारे पश्चिमी सभ्यता के समर्थकों ने नारी जीवन के सामने प्रस्तुत किया है देश की नारियों को अत्यन्त सावधानी से पग उठाने होंगे। उस पर जो प्रभाव अभी पड़ना प्रारम्भ हुआ। उसे भी त्यागना होगा। शरीर के अंग प्रति—प्रत्यंग अर्द्धनग्न प्रदर्शन उनके जीवन की न तो जरिया को वढ़ाने वाला है, न सौन्दर्य वृद्धि सहायक होता है अलवत्ता इसे यदि नये—युग की स्वतंत्रता मानकर नारी धड़ाधड़ अपना रही हो तो उसका उत्तर यही है कि जो लोग उनको ऐसा करने के लिए उत्साहित करते हैं वही उनके पतन के

कारण भी हैं। देश के समाचारों मे छपने वाले अधिकांश समाचार ऐसी ही कुत्सित घटनाओं से अधिकाँशतः भरे रहते हैं। देश के अन्दर बढ़ने वाला अनाचार इन्हीं कथित स्वतंत्रताओं का परिणाम है। यदि नारी को अपने देश की रक्षा करनी है और अपनी सर्वोच्च सत्ता को यथावत् रखना है तब उसको सामाजिक मर्यादाओं का पालन करते हुए पति पत्नी माता और भग्नि का जीवन बिताना ही होगा अन्यथा स्वतंत्रता के चरमोत्सर्ग का उदाहरण उनका विशृंखलित समाज-हिप्पी समाज है जो एक पशु जीवन से अधिक महत्व नहीं रखता उसी का अनुकरण करना पड़ेगा। इसके बाद वास्तविक जीवन में लौटते लौटते उसे फिर युगों लग जायेंगे। पुरुष को पुनः नारी आदर्शो की दुहाई देनी पड़ेगी। नारिओं को अपने त्याग–तपस्या और सेवाभावी आचरण को पुनः अपने अन्तर में स्थान देना पड़ेगा। तब भी शायद उतना सुन्दर और सुहाना न होगा, जितना सुन्दर सुहाना जीवन भारत में नारी का है यदि उसे विशृ–खलित न होने दिया जाय। उसकी गरिमा की रक्षा की जाय। देश की इस गौरवमयी थाती को सुरक्षित रखा जाय।

भारतीय नारी प्रत्येक दृष्टि से कर्म परायण-कर रही है। आवश्यकता के समय उसने तलवारी भी उठांयी है। वह भी सतीत्व के लिए, देश के लिए और समाज के लिऐ उनका त्याग ही था और इसलिए उनका नाम इतिहासों की अनमोल निधि बन गया। क्या इनके विपरीत आततायी के सामने आत्म-समर्पण करने वाली किसी महिला का नाम इतिहास में देखा है। राजा दाहर की पुत्रियों का नाम तो इतिहास की निधि है, लेकिन पत्नी का क्यों नहीं ? पद्मनी का नाम इतिहास का विषय है, लेकिन मेवाड़ की और कितनी रानियों का नाम अमर है। स्पष्ट है कि अमरता के अन्तर में त्याग का मदान योग है। यही योग संसार ने भारतीय नारी के हृदय में देखा है और देख रहा है। आशा है देख-ता रहेगा।

—oOo—

नारी का वैवाहिक जीवन

नारी का वास्तविक जीवन उसके विवाह के पश्चात् प्रारम्भ होता है। यही उसकी बुद्धिमत्ता, धैर्य, कर्तव्यपरायणता और सेवा भाव की कड़ी परीक्षा का भी होता है। विवाह के उपरान्त पितृ-गृह छोड़कर उसे पति-गृह में जाना पड़ता है। बाल्यकाल के अभिभावकों, चिरपरिचित बन्धु-बान्धवों और सखी सहेलियों से विछोह होकर एक नितान्त अपरिचित वातावरण उसे पति-गृह में मिलता है। जहां उसका कोई परिचित नहीं होता। अपने नये परिवार के किसी भी व्यक्ति की आदत, रुचि तथा स्वभाव आदि से वह परिचित नहीं होती। उस विपरीत वातावरण में अपने को ढ़ाल लेना नारी की बुद्धिमत्ता पर निर्भर है।

उस समय उसके सामने नित नयी कठिनाइयां आ सकती हैं। नयी-नयी परिस्थितियों की गुत्थियां उसे सुलझानी पड़ती हैं। यह अवस्था ठीक उसी प्रकार की होती है जिस प्रकार किसी शासक की होती है। उसे शासन भी करना होता है, किन्तु अन्य अधिकारियों, क्षेत्रिय परिस्थितियों तथा क्षेत्र के रहने वाले विशिष्ट व्यक्तियों की स्थिति, रुचि और आवश्तकता का भी ध्यान रखना पड़ता है। उस समय उसका सहायक अन्य कोई न होकर उसकी बुद्धि बल, कर्तव्यपरायणता और विवेक होता है अथवा सहायक होते हैं वे पाठ, वे सीखें वे उपदेश जिन्हें बाल्यकाल से लगाकर पति-गृह भेजने तक अपनी उस कन्या के मस्तिष्क में माता ने निरन्तर भरा है।

वस्तुत: सन्तान को संभालने का कार्य ही माता नहीं करती, अपितु उसे सभी प्रकार से परिष्कृत करने का कार्य भी माता ही कर सकती है। पिता का कार्य क्षेत्र बाहर होने के कारण वह सन्तान के प्रति उतना ही ध्यान नहीं

दे पाता जितना घर पर माता दे सकती है। इसके अतिरिक्त पिता दो प्रकार के होते हैं—क्रोधी अथवा नितान्त सन्तान के प्रति उपेक्षित जिसमें शीतल स्वभाव वाले पिता भी सम्मिलित हैं। यह दोनों ही प्रकार के पिता सन्तान को कर्तव्य-निष्ठ बनाने में सहायक नहीं होते। अतः जो अच्छी माताएँ हैं, वह अपनी सन्तान को संभालने के साथ-साथ उसके भावी जीवन को सच्चरित्र निष्ठा का कार्य भी साथ-साथ ही करती हैं। यहीं तक नहीं, ऐसी विदूषी महिलाएँ सन्तान के साथ-साथ पति की प्रवृति को भी बदल डालती हैं।

कलकत्ता की जिस महिला का वर्णन पिछले पृष्ठों में आया है, वह हमारे उक्त कथन की पुष्टि करता है। वर्तमान काल में कोई नारी इतनी सच्चरित्र, कर्तव्यनिष्ठ और धर्म-परायणता के साथ-साथ भारत की प्राचीन नारियों के समान पति-व्रता भी हो सकती हैं, जबकि सर्वथा विलासी-क्षेत्र उसके सामने हो संभव नहीं लगता है। किसी भी जिज्ञासु के लिए जिज्ञासा उत्पन्न करता है, जिज्ञासा उत्पन्न होना स्वाभाविक ही था कि उनके जीवन में यह उच्चसंस्कार इतनी अल्पायु में कहां से उत्पन्न हुए वह कौन ऋषि-तुल्य गुरु था जिसने उसे भावी-जीवन को सर्वथा संभालने के लिए तैयार करके पति-ग्रह में भेजा था। तब उसने बताया कि वास्तव में मुझे इतना साहसी और धैर्यवान मेरी माता ने ही बनाया था। उनके अतिरिक्त उनसे अच्छा अन्य कोई गुरु मुझे नहीं मिला और न ही सम्भव ही था। अतः एक माता ने अपनी पुत्री को इतना सबल धैर्यवान बना दिया कि उसने सारी आपदाओं का सामना किया और अपने सहित अपने परिवार की उलझी गुत्थियों को भी सुलझा लिया। पश्चात् उसने भी उसी आदर्श माता का अनुकरण सन्तान के लिए, जैसी कि स्वयं किया उसे माता से शिक्षा मिली थी। परिणाम यह निकला कि वह अपनी सन्तान को चरित्रवान और कुशल व्यवसायी बनाने में सफल हो गयी और वट-वृक्ष की शाखाओं की भांति परिवार की ख्याती को बढ़ाने में सफलता अर्जित की। यह सब माता के कारण ही हुआ।

ऋग्वेद में पाणि-ग्रहण संस्कार के अवसर पर एक श्लोक (उपदेशात्मक) कन्या के लिए आया है। उसमें उसे उपदेश और आदेश—दोनों ही दिए गये हैं

कहा है कि गृह जाकर अपनी सेवा द्वारा सास-स्वसुर के हृदयों को जीतो परिवार के अन्य प्राणियों से सुमधुर व्यवहार करके उन पर शासन करो। इस वेद वाक्य को तो कन्या ने गांठ बांध लिया, परन्तु जहां कोई सेवा कराने के लिए तैयार न मिले और पत्नि को उल्टा भार माने, उस समय वह क्या करे। उस समय तो उसके सहायक वही माता के उपदेश और आत्म-शक्ति ही होती है।

उस विपरीत अवस्था में वहुत सी महिलायें विचलित हो जाती हैं। कोई आत्महत्या करती है, कोई दूसरा मार्ग अपनाती है। यह इसलिए कि उन्हें अपनी माताओं से आत्म प्रवलता के उपदेश मिले नहीं होते। साहस का उनके जीवन में अत्यंत अभाव होता है। यूरोप अथवा अमेरिका के सामाजिक जीवन के पतन का कारण भी यही है कि वहां की माताएं स्वयं चरित्रवान नहीं होतीं। तब वे अपनी सन्तान को चरित्रवान कैसे वनायें। उनकी उस सामाजिक विश्रृंखलता का परिणाम यह हो रहा है कि न कोई पुरुष गारन्टी के साथ यह कह सकता है कि अमुक महिला मेरी पत्नी है और न ही कोई स्त्री अधिकार पूर्वक यह कह सकती है कि अमुक व्यक्ति मेरा पति है। कल कौन किसका पति अथवा कौन स्त्री किसकी पत्नी वनजायेगी यह कोई नहीं जानता। यूरोप जैसी स्थिति परवर्ती कालों में वेवीलोनिया, ग्रीक और प्राचीन रोमन साम्राज्य में भी आ चुकी थी। लेकिन उन कालों में भी भारत की नारियों ने ही इस देश के समाज की रक्षा की थी। उसी परम्परा को आज भी अधिकांश महिलायें निभाती चली जा रही हैं।

अस्तु, प्रसंग विवाह के पश्चात् नारी की स्थिति का था और उसकी कर्तव्यपरायणता का साथ ही यह भी था, जवकि परिस्तिथियां सर्वथा विपरीत हों। उस समय नारी को क्या करना चाहिऐ ? यह परिस्थितियां कभी-कभी उसके आचार-विचार, रहन-सहन और उसकी धार्मिक तथा सांस्कृतिक मान्यताओं के सर्वथा विपरीत तक होती हैं। उदाहरण के लिऐ यदि पति अत्यन्त आधुनिक विचारों का व्यक्ति है और पत्नी का जीवन अथवा उसकी शिक्षा-दीक्षा सनातनी विचारों के अनुसार हुई है तो एक अद्भुत असामंजस्यता की दीवार सी दोनों के वीच आ खड़ी होती है। पति चाहता है कि वह आधुनिक

युग की नारी के समान उसके साथ मनोरंजक स्थलों पर जाय और वहां उसके मित्रों के साथ हास-परिहास में भाग ले, यह क्रिया-कलाप सुशिक्षित भारतीय नारी के लिए अत्यन्त कठिन कार्य होता है। यह उसकी विद्वत्ता की कसौटी का समय होता है। यदि उसके संस्कार अच्छे परिष्कृत हैं, तब वह पति के मित्रों की उच्छृंखल मण्डली को भी सीमा के दायरे में बांध सकती है और विलासमय परिहासों को भी शिष्टता की ओर मोड़ सकती है। ऐसी नारी के सामने वाचाल से वाचाल पुरुष या तो निरनत्तर होकर सर नीचा करके बैठ जाता है अथवा वह स्वत: भी अपनी वाक्-धारा को सुसंस्कृत दिशा दे देता है, ताकि असभ्यता का बोध उसके प्रति न हो।

भारतीय नारियों की यह विशेषता रही है कि घोर पति-व्रता होते हुए भी अपनी विशिष्ट युक्तियों द्वारा अपने पति की जीवनचर्या के परिवर्तन और परि-मार्जन में सतत प्रयत्नशील रही है।

रामायण-काल में रावण की मारकाट की आसुरी प्रवृति को सीमित करने के लिए उसकी पत्नी मन्दोदरी ने शतरंज का आविष्कार किया था और रावण ने अपने आखेट के समय को इस खेल में लगाना शुरु कर दिया था। इससे दोनों का लाभ हुआ। पति पत्नी दोनों का मनोरंजन भी हुआ। परन्तु उसी प्रकार के घरेलू मनोरंजन और आजकल के क्लबों और सिनेमाओं के मनोरं-जनों में आकाश-पाताल का अन्तर है। वह मनोरंजन ज्ञान, चतुराई सिखाते थे और आज के मनोरंजन व्यभिचार बढ़ाने के साधन हैं। जहां अश्लीलता के नग्न प्रदर्शन होते हों, वहां भला चरित्र निष्ठा को कहां स्थान मिल सकता है। भारतीय ऋषि-मुनियों ने तो भारतीय नारी को यहां तक सलाह दी है कि विवाह के पश्चात् किसी नारी का दूसरे व्यक्तियों से संभाषण आदि करना अपने पति के प्रति तो महान् दुर्व्यवहार है, ही साथ ही ऐसे कार्य से चरित्र के अशुद्ध और अपवित्र होने की आशंका सदा बनी रहती है। अत: सभी प्राय स्मृतिकारों ने भी नारी को "मनसा वाचा कर्मणा" पति के प्रति आदर निष्ट प्रवृति अपनाने का आदेश दिया। इसके विपरीत आचरण करने वाले पति को भी दण्ड देने का आदेश है और दुश्चरित्र स्त्री को भी दण्ड का भागी माना है

स्मृतिकारों ने तो " सततं देववत् पतिम् "का उपदेश देकर नारी को देवता की भांति पति की पूजा करने का आदेश दिया है। परन्तु यह स्मृति-युग नहीं हैं, यह मान लेने पर भी इतना तो सभी मानते हैं कि मानवी-युग तो है। मनुष्यता के नाते ही सही अथवा अपने देश की मर्यादाओं की रक्षा करने के नाम पर भी भारतीय नारी को जीवन में नैतिकता को उच्च स्थान देना ही चाहिए। वह इसलिए भी कि भावी सन्तान को उन्हीं का अनुकरण करना है। उनके कोमल हृदयों पर जो संस्कार बाल्यवस्था में पड़ जाते हैं, उसको बदलना संभव नहीं हो पाता। किसी भी पत्नी के ऐसे व्यवहार कारण उसकी न तो हीनता है और न ही सामान्यता अथवा साधारणता अपितु यह उसकी उच्चता और सबलता का प्रतीक है। ऐसी वधु को पाकर एक परिवार मात्र ही नहीं, अपितु पास- पड़ोस तक धन्य हो जाते है और अपने परिवार की महिलाओं या कन्याओं को उस जैसा आचरण अपनाने की सीख वे लोग देना प्रारम्भ कर देते हैं।

वेदों में तो नारी को इतना शक्तिशाली, बुद्धिमत्ता और धैर्य-निष्ठ माना गया है कि बार-बार वेद यह आग्रह करते हैं कि हे नारी ! तूने अपने भटके हुए पति को मार्ग दिखा। हे नारी ! तू जीवन से निराश अथवा जीवन के संघर्षो से घबराये हुए अपने पति का आलम्बन बन कर उसके मन मानस में साहस क संचार कर, उसके पुरुष को जगा ताकि वह यश और धन कमाने में समंथ हो सके। यजुर्वेद में तो नारी-शक्ति का वर्णन यहां तक किया गया है कि जिस प्रकार अग्नि जीवन को विद्युत प्रकाश को और सूर्य दर्शन-शक्ति को जन्म देता है, उसी प्रकार सुलक्षणा पत्नि का व्यवहार गुणों को, ज्ञान को, धन-समृद्धि तथ बल-पराकर्म को जन्म देता है और साथ ही वह अपने पति को अधर्माचरण से भी बचाती है। इसलिए प्रत्येक विवाहित नारी को अपनी इस शक्ति को पहचान कर ही पतिगृह में परिवार से व्यवहार करना चाहिए।

वेदों में पतियों को भी आदेश और उपदेश दिये गये हैं। अपनी पत्नी के प्रति उसका क्या कर्तव्य है। उसका किस तरह मान सम्मान करना चाहिए अथवा उससे कभी झूठ नहीं बोलना चाहिए और यह भी बताया गया है कि

अपना गृहस्थ जीवन किस प्रकार सुख शान्ति से व्यतीत करना चाहिए, किन्तु यह हमारी पुस्तक का विषय न होने के कारण उसका वर्णन नहीं किया जा रहा है। हमारी पुस्तक का विषय केवल नारी जीवन-मात्र ही है।

वेदों ने तो स्त्री और पुरुष को जीवनरूपी रथ के दो पहिये माना है। उन्हें आकाश और भूमि के समान एक दूसरे का पूरक उपकारक माना है। ऋग्वेद एक ऋचा में उन दोनों को संसार के दुखों का नाश करने वाले कहा गया है। इसलिए दोनों को समान स्तर पर रख कर उन्हें समान ही उपदेश और आदेश भी दिया है। साथ ही सुख-सामग्री का समान रूप से ही उपभोक्ता भी स्वीकार किया गया है। वेद का आदेश है कि दोनों ही एक डाली पर बैठने वाले दो पक्षी हैं। अतः उनमें विशुद्ध प्रेम अनिवार्य है। वेदों का कथन है कि मानव जीवन सुख का तभी अनुभव करता है, जब उसे कोई सहारा देने वाला हो, जब क्लांत होने पर वह विश्रान्ति हेतु अपना भार विश्वास पूर्वक दूसरे के कन्धों पर डाल सके। परिश्रम के समय दाहिना हाथ, वांयें हाथ की सहायता प्राप्त कर अपने थके हाथ को विश्राम कराकर सुख का अनुभव करता है, ठीक यही अवस्था पुरुष की है। वह भी जब विविध जंजालों से त्रस्त हो जाता है तब उसकी सहायता नारी ही करती है। वही उसे मानवी जंजालों से मुक्त करती है और कालान्तर में तो पत्नियों ने पतियों की इस मुक्ति को पराकाष्ठा तक पहुंचा दिया है। तुलसीदास और उनकी पत्नी रत्नावली का दृष्टान्त एक ऐसा ही दृष्टान्त है। रत्नावली ने अपने पर विशेष रूप से मुग्ध तुलसीदास की विचारधारा को श्रीराम की ओर मोड़ा और श्रीराम कथा लिखने के कारण ही तुलसीदास तो सदैव के लिए अमर हो गये, अमर रत्नावली भी हो गयी। एक रत्नावली के कारण देश के समाज को भारी लाभ हुआ। एक रत्ना का त्याग ही इतना महान् बन गया कि वह विश्व के आकर्षण, संसार के विचार और परिवारों के सदाचार की उत्तम धरोहर बन गया।

यह सब एक नारी के कारण हुआ। यह रहस्य क्या है ! यदि वह उद्घाटित न भी हो सके तो यह मानना ही पड़ेगा कि यह एक नारी के विवेक के कारण ही संभव हो सका जिसने तुलसी को तुलसी बनाया अन्यथा लाखोंतुल-

सीदास ससांर में आते जाते रहेंगे।

यह सब बातें तो हमारे देश के अनादि काल की हैं। उस काल की जब मानव जीवन इतनी उलझनों में उलझा हुआ नहीं था। उसके अन्दर धर्म भावना की प्रबलता थी। परन्तु वर्तमान समय पहले समय के सर्वथा विपरीत है। देश में ऋषि मुनियों का अभाव है। उपदेश या अधिकार पूर्वक आदेश की प्रथा समाप्त हो चुकी है। अब तो हर उपदेश या आदेश को या तो वैज्ञानिक कसौटी पर कसा जाता है अथवा देश के संविधान की तुला पर तोला जाता है। उस तुला पर जिसमें तर्क की काफी गुन्जायश है। इसलिए पुनः प्रश्न यही आता है कि, तब सन्तान को कर्तव्यनिष्ठ, धर्मनिष्ठ, देश-भक्त और साहसी कौन बनाये। पति के पास अवकाश का अभाव है और माता यदि वर्तमान विसान युग से आयी है अथवा सारा परिवार ही उसका आधुनिकता का पुजारी रहा है, तब संतान को संभालने का सवाल ही समाप्त हो जाता है। अन्यथा शतपथ ब्राह्मण में "मातृमान् पितृमान् आचार्यवान् पुरुषो वेद" कह कर मानव का प्रथम गुरु माता को माना है और यही सत्य भी है। माता जैसा उपदेश जैसे आचरण अपनी पुत्री और पुत्रों के सामने रखेगी, उसका प्रतिविम्ब सन्तान होगी। माता के यही उपदेश किसी भी विवाहित नारी के लिए सबसे बड़ी धरोहर होते हैं। वही उसकी शक्ति और साहस के श्रोत होते हैं। किसी भी संकठ के समग वही उसके ज्ञान तंतुओं को सचेत करते हैं और कर्तव्य के प्रति अडिग भावना का संचार उसके हृदय में उत्पन्न करते हैं। अन्यथा किसी भी नारी के लिए वर्तमान युग में अपने चरित्र को निर्मल बनाये रखना सरल कार्य इसलिए नहीं कि आस पास गन्दे नालों और नालियों की बहुतायत वर्तमान युग में हो गयी है। इस गन्दगी से बचने के लिऐ प्रत्येक नारी को अपना पहले मन शुद्ध रखना पड़ता है। और मन शुद्ध होने पर गन्दगी से स्वयं घृणा होने लगती है और जब घृणा होने लगेगी, तो उसे दूर करने के उपाय भी बुद्धि में आ ही जायेंगे।

पश्चिमी देशों में क्योंकि इस गन्दगी से घृणा नहीं की गई अतः वहां गंदगी बढ़ती गयी और बढ़ती जाती है। पेरिस, लन्दन और म्युनिख के नाट्य-क्लब

(अब कुछ नई दिल्ली में भी) इस गन्दगी के प्रभाव स्वरुप जीता जागता उदाहरण हैं। जहां पिता नशे में है, पुत्र नशे में है और पुत्री नशे में है। वह भी कोई परिवार है ? अपनी राय में तो उस परिवार को पशुओं का एक झुण्ड मात्र कहा जा सकता है। अतः भारतीय नारी के सामने जब वह विवाहित होकर पति गृह में आती है, कर्तव्यों का पहाड़ उसके सामने होता है। उस समय चाहे पतिगृह में अकेला पति ही क्यों न हो।

प्रत्येक नारी को वातावरण का गहन अध्ययन अपनी बुद्धि से ही करना होता है। अपने पति की दिनचर्या, उसकी मानसिक स्थिति यदि उसमें तनाव है या विलगाव है तो उसके कारण और निदान का उपाय पत्नी को ही करना होता है। उस समय उसकी एक जरा सी भूल दोनों की सामाजिक प्रतिष्ठा को आघात लगा सकती है। वेदाचार्यो ने इसी कारण नारी को बारम्बार उपदेश शालीनता ग्रहण करने के लिये दिये हैं। क्योंकि वे जानते थे कि पुरुष प्रकृति से उच्छृंखल है। नारी में मर्यादा जीवित है। यदाकदा सुप्त हो सकती है, परन्तु पुरुष भुलक्कड़ और छल प्रवृति का होता है, वह अपने निश्चय से डिग सकता है। फिसल सकता है, लेकिन नारी यदि एक बार किसी निश्चय को मन में धारण करले तब उसे विश्व की कोई शक्ति तो अलग साक्षात ब्रह्मा भी नहीडिग सकते है। यही कारण है कि देवता का पद एक 'माता' के पद से उच्च नहीं माना गया एक पतिव्रता के सामने देवताओं तक को नतमस्तक होना पड़ा है। इसलिए यह सार्थक बात है कि नारीकर की सामग्री-यदि चाहे तो समाज और राष्ट्र को अत्यन्त सबल बना सकती है। वह जैसे कर का निर्णय करेगी, वैसा ही सम्पूर्ण समाज का ढांचा बदल जायेगा। इस कथन का एक उदाहरण तो हमने पहले पृष्ठों में ही दिया है।

यदि अर्वाचीन पद्धिति को अपना कर नारी स्वयं भी पुरुष क्षेत्र में पदार्पण करती है तो निश्चय ही मानव समाज की नींव जो कि शैशयावस्था में माता ही तैयार करती है, कच्ची रह जायेगी और दशा में स्वतंत्रता जीविका अर्जित करने वाली पत्नी अपने पति को सत्मार्ग पर प्रेरित करने में समर्थ नहो सकेगी।

वस्तुत: वेदासा उसे कर का परिवार का कार्य सौंप देनेकी आशा देकर उसकी स्वतंत्रता का अपहरण करने के इच्छुक नहीं, अपितु वह देश को सबल, स्वतंत्र और शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में देखने के लिये लालाचियत हैं। वह आजकल में नारी को वाह्य क्षेत्र में कार्य करने की पूरी स्वतंत्रता प्रदान करते हैं। अथवा वेद में उसे गौ की भांति सरल ममतामयी और प्रेम का सदन बताया गया है; शिन्तु जब उस गौ को अशारण कोई तंग करता है या उसका अपमान करने का साहस करता है, तब वह एक सिहनी के समान खूंखार भी बन जाती है। अत: यह सिद्ध है कि उसका कर में रहना उसकी दासता का सूचक सहीं है, कर्तव्य का सूचक है।

वर्तमान काल की नारी के सामने यह आदर्श देश-काल की परिस्स्थि- के कारण गौण हो चुके हैं और उनका गोण होना ही उसके सामने नये व्यवधान उत्पन्न करता है, क्योंकि नये समाज की नयी रोशनी में पलने वाली उसकी देवरानी, जिठानी अथवा पति के मित्रों की पत्नियाँ अधिकांशत: स्वतंत्र और स्वच्जरन्द जीवन विताने वाली होती हैं और अपने पक्ष को प्रवल करने के लिये वह तर्कों के लिये सदैव तत्पर भी रहती हैं। उनकी वेश-भूषा तर्क शैली पश्चिम की अर्द्ध नकल होती है मध्य कालीन नारी सम्वन्धी विचारों प्रतिक्रिया में यह अर्द्ध नग्ना वाजारों तिर्द्वन्द घूमती हैं। पर-पुरुष से वातचीत करने में संकोच का अनुभव उन्हें नहीं होता। इसी कारण उनके व्यक्तित्व में वहुत भारी परिवर्तन आ चुका हैं। अत: उनके सम्भाषण में और उनकी तर्क शैली में निर्जीवता तो होती हैं; परन्तु अपने ह० के कारण वह उस निर्जीवता की भी रक्षा करती सो लगती हैं। इस लिए ऐसे नारी समाज का सामना भी एक विवाहित नारी को करना पड़ता है और उनसे तर्क भी करना पड़ता है। अत: इस प्रकार के तर्कों के लिये भी नारी को तयार रहना चाहिए।

यह जागृति का युग है। जीवन के संघर्षो का युग में एक प्रकार का पुरुष विलासिता की ओर तेजी से बढ़ रहा है। यदि उसे न रोका गया तो

जोस्थिति कभी प्राचीन यूनान और रोमन साम्राज्य की हुई थी, वही स्थिति अपने देश की हो सकती है। देश को उस स्थिति से बचाने का भार नारी को अपने कंधों पर लेना ही होगा। विशेषकर विवाहित नारियों को और उनमें भी अधिकतर धनिक परिवार की महीलाओं को क्योंकि निर्धनों से अधिक यह पाप धनवान व्यक्तियों में अधिक फैला हुआ हैं। अतः पति-गृह मे आकर पत्नि का प्रथम कर्त्तव्य अपने पति पर गम्भीर दृष्टि में पति की बीच-मण्डली भी शामिल है। यही मित्र-मण्डली कभी एक देव-पुरुष जैसे व्यक्ति को भी पतन की ओर घसीट ले जाती है। इस मंडली में या तो धन लोलुप होते है अथवा वे व्यक्ति होते हैं जो किन्हीं दुर्गुणों मे ग्रस्त होते है और उन दुर्गुणों को चालू रखने के लिए उनके पास साधन नहीं होते। अतः वह किसी ऐसे व्यक्ति की खोज में रहते हैं जो इतना साधन सम्पन्न हो कि अपने दुर्गुणों के साथ उनके दुर्गुण किसी न किसी प्रकार की वेश्यावृत्ति अथवा पअकीया पसंग के या मघपान जैसी बुराई के होते है, इन्हीं में धन और स्वास्थ्य की होली होती भी अधिक है। हत्यायें और आत्महत्यायें भी इन्हीं के कारण अधिक होती हैं। परिवारों के अपमान और विनाश भी इन्हीं के कारण अधिक होते हैं। अतः पति की मित्र मंण्डली पर दृष्टि रखना प्रत्येक नारी का प्रथम कर्त्तव्य है।

उसका यह प्रथम कर्त्तव्य यह भी है कि अपने पति के अन्दर छिपे गुणों का मूल्यांकन करे और उनको अपने कला-कौशल से विकसित करने के लिये प्रेरित करे। वस्तुतः माता और पत्नी-दोनों ही पुरुष के निवास में अपने-अपने स्थान पर अद्वितीय हैं। पति के गुणों के विकास के लिए यह सावधानी रखनी अत्यंत आवश्यक है कि पत्नी के शब्दों में तिरवाई न हो तिरस्कार जैसे उपदेश न हों आपितु माधुर्य हो, रोचक उदाहरण हों। हाँ, प्रेम-पूर्वक प्रताड़ना समय और परस्थिति का घ्यान करके दी जा सकती है।

समस्त वातावरण पर गम्भीर दृष्टि

विवाह के उपरान्त पतिगृह में आकर उसे समस्त वातावरण पर एक गम्भीर दृष्टि डालनी अनिवार्य है। इस दृष्टि डालना अनिवार्य है। इस दृष्टि से समस्त वातावरण उद्घाटित हो जाता है। दीवारों पर दृष्टि पड़ते ही यह वोध हो जाता है कि परिवार किस प्रकार के आचार विचार अनुयायी है। दीवारों पर रंगे कलैण्डर और मित्र परिवार की रूचि का ही प्रतिविम्व होते हैं। उसके पश्चात् मकान की अलमिरियां भी परिवार के मित्र को पर्याप्त उजागर कर देती हैं। उनमें रखा हुआ साहित्य व्यक्ति के चरित्र का द्योतक होता है। उनमें और भी ऐसी चीजें प्राप्त हो जाती हैं। यदि निम्न श्रेणी का साहित्य अथवा चित्रों जैसी वस्तुयें हैं तो उनको भी धीरे-धीरे वदलकर कलात्मत चित्र और उच्च कोटि के साहित्य चित्र और उच्च कोटि के साहित्य को स्थान देना चाहिए।

यदि परिवार सम्पन्न है तो घरेलू नौकरों का घर में रहना अनिवार्य: घरों के क्रिया-कलापों का भी प्रभाव पड़ते देखा गया है। वहुतों के अन्दर भयानक दुर्गुण तक होते हैं। प्रकट में वह वड़े भले वने रहते हैं। अत: ऐसे नौकरों चन्द दिन में ही परखा जा सकता है और उनके प्रभाव से परिवार को भी मुक्त किया जा सकता है।

वाचालता और मौनो-दोनो बुरे

प्रत्येक नारी जीवन के लिये यह अनिवार्य है कि उसके अन्दर न वाचालता ही हो और न मौन धारण करने प्रवृत्ति। यह दोनों ही आदतें बुरी हैं। वोलचाल सहज गाम्भीर्य होना चाहिए। वाचालता के कारण कभी-कभी दूसरे व्यक्ति नारी चरित्र के मूल्यांकन में गम्भीर भूल कर जाते हैं और चुप्पी का अर्थ तो स्वीकृति आदि काल से प्रचलित है। इस लिये जो भी वोला जाय वह सुस्पष्ट हो, बुद्धियता पूर्ण तथा युक्ति-

युक्त हो और सारगर्भिता हो, इससे प्रत्येक श्रोता पर—चाहे पति हो अथवा अन्य परिवारो या स्वजन—गम्भीर प्रभाव पड़ता है और अनंगल वार्तालाप का साहस वह नहीं कर पाता। वोलने में जहाँ सुस्पष्टता हो, वहां यह भी ध्यान रहे कि न तो मस्तक पर सलवटें पड़ें और न ही आँखों में कठोरता लक्षित हो।

कभी-कभी ऐसे प्रसंए नारी जीवन में आस्थित होते हैं, जवकि उसकी वाक्-पटुता की परीक्षा हो जाती है। यह परीक्षा उस समय होती है, जवकि निकट के दो परिवारों अथवा दो निजी रिश्तेदारों में किसी वात विशेष अथवा कारण विशेष के कारण तनाव वढ़ जाता है वह तनाव कभी-कभी भयंकर शत्रुता का रूप तक धारण कर लेता है। ऐसा तनाव कभी-कभीं पिता-पुत्र तथा दलाद और स्वसुर के मध्य भी उपस्थित हो जाता है। अतः उस समय उस तनाव को तिरोहित करने का दायित्व घर की चतुर गृहणी का ही होता है और वहीं अपनी सहज वुद्धि से परिवारिक जनों के मध्य आये उस तिमिर को हटाने में समर्थ होती है। ऐसी ही एक घटना व्यापार के सिलसिले में एक दामाद और स्वसुर के मध्य घटी। उस समय एक पत्नि की क्या स्थिति होती है—कल्पना कीजिए कि वह पति का पक्ष ले अथव पिता का। साधारण स्त्रियाँ ऐसे अवसरों पर अपनी वुद्धि के अनुसार पिता या पति का पक्ष ले वैठती है, किन्तु वुद्धिमती महिलायें उस विवाद को ही समाप्त करा देती हैं। फिर भी यह मानना पड़ेगा कि ऐसे विवादों समाप्त करा देना कोई साधारण कार्य नहीं होंता। अत्यन्त दुष्कर होता। मास्तिप्क वहुत संयत-सीमित करना पड़ता और वुद्धि को प्रखर भी। अतः यह अनिवार्यता प्रत्येक सभ्य नारी जीवन में होंनी आवश्यक है कि उसकी प्रवृत्ति नुधार परम हो—विवाद परक नहीं।

धार्मिकता का प्रभाव

पुरुप हो अथवा नारी, उसके अन्दर धार्मिक भावना का होना

होना मानवीय गुणों का प्रथम स्थान रखता है। मनुष्य, पशुत्व की ओर तभी अग्रसर होता है, जबकि उसके अन्दर धार्मिक हीना जड़ पकड़ जाती है। इस स्थिति में उसका विवेक लुप्त हो जाता है आत्मिक सुख का स्थान, पर्थिव शरीर ले लेता है। दूसरे शब्दों में आत्मिक सुख क्या है, इसे वह अनुभव कर ही नहीं पाता। यदि उसे भगवान् का भय हो अथवा वह आत्मा और परमात्मा को एक मानकर अनुभव करे कि तेरे हृदय के अन्दर बैठा हुआ भगवान् तेरे प्रत्येक क्रिया-कलाप को देख रहा है, तब शायद वह ऐसे बुरे कामों को न करे जिन्हें वह कर बैठता हैं।

प्रकृति का यह नियम हैं कि कोई भी बुरा कार्य करते समय आत्मा उसे रोकती हैं—रोकती हैं, लेकिन मनुष्य तब भी यह नहीं समझता कि उसके अन्तर में कोई हैं जो उसे देख रहा है, रोकने का प्रयत्न कर रहा है। जवानी के उन्माद गुरुओं का आभाव था माता-पिता के समुचित ध्यान न देने के कारण अथवा कुसंगति में पड़ने पर मानव कर्तव्य निष्ठ और धर्म-निष्ठ दोनों गुणों को खो बैठता है और इन्हीं गुणों के अभाव के कारण सारा सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक ढांचा डगमगा रहा है। अतः कम से कम नारी के लिये यह अनिवार्य है कि वह धार्मिक प्रवृत्ति का त्याग न करे। इस प्रवृत्ति के कारण ही उसे जीवन में प्रवृत्ति के कारण ही उसे जीवन में प्रकृति साहस प्रदान करती है, उसके उर में दया-भावना का संचार करती है। उसके मत में कर्त्तव्य परायणता और त्याग-भावना का भीं संचार करती है और उसे अन्ततः जननी का पद प्रदान करती है ताकि वह अपनी स्वच्छ भावनाओं से समाज और देश को आलोकित करने वाली सन्तानों को जन्म दे।

यदि नारी के अन्दर धर्म भावना होगी तब वह प्रत्येक प्रकार के दुष्कर्मों से वचेगी और अपने जीवन की पवित्रता को सुरक्षित भी रख सकेगी।

जीवन की पवित्रता ही मानव-जीवन के लिए-विशेषकर नारी जीवन

के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण वस्तु है। शिसी भी नारी जीवन की पवित्रता उसकी अपनी पवित्रता तो है ही राष्ट्र की संस्कृति की भी प्रतीक है। यदि समाज से नारी की पवित्रता का अन्त हो जाता है तो वह समाज ही नहीं, समूचे देश के लिए भी महान् आपत्ति का कारण वनता है। इस लिए हमारे समाज का सामाजिक-विधान जिन ऋषि - मुनियों ने वनाया है, उन्हों उसको दो वातों का ध्यान विशेष रूप से रखा है। पहली बात नारी का समाज में सम्मान और दूसरी वात, नारी जीवन की पवित्रता। क्योंकि इससे समाज में विश्रृंखलता तो आ नहीं पाती साथ ही सामाजिक वुराइयां भी वनपाती हैं।

यह बुराइयां चारित्रिक ही नहीं होती, अपितु दूसरी प्रकार की भी होती है। उदाहरण के लिए एक ही चरित्रवान नारी का मन उज्ज्वल होगा। आत्म शक्ति विशाल होगी, धैर्य और दया की भावना का वह भण्डार होगी और दृढ़ निश्चयी होना तो अनिवार्य है ही। उसके इन्हीं गुणों के कारण केवल एकमात्र परिवार को ही वल नहीं मिलेगा, अपितु समूचे समाज को लाभ पहुंचेगा, इस लिए भारतीय ऋपि-मुनियों ने अपने धर्मग्रन्थों में इस चंचल चित्त को उछात्तता से वचाने के अनेक उपायों अनेक धार्मिक अनुष्ठानों तथा पूजा विधानों का वर्णन किया। इन अनुष्ठानों से जहां आत्मविश्वास वढ़ता है, वहाँ वुद्धि भी निर्मल होती है।

उन ऋषि-मुनियों का मन्तव्य यही था कि वुद्धि की निर्मलता उस उच्च श्रेणी की होनी चाहिए, जिस श्रेणी पर पहुंचकर निर्मल वुद्धि वाला व्यक्ति प्रतिहिंसा को भूल जाता है। आक्रोश की भावना समाप्त कर देता है। जिसमें व्यक्तिगत स्वार्थ का लेश मात्र भी अंश नहीं रहता। ऐसा व्यक्ति अपना जीवन दूसरों के लिए मानकर आयु का उपभोग करता है। ऐसे व्यक्ति के लिए यह अनिवार्य नहीं है कि संसार त्याग कर केवल साधु सन्यासी ही वन जाय। समाज में रह कर गृहस्थ-जीवन

यापन करते हुए अपनी चरित्रनिष्ठा का प्रभाव समाज पर डालते हुए जीना-संसार का सबसे उत्तम पुण्य कर्म है। भारत में इसी प्रकार का जीवन व्यतीत करने वाली महिलाओं को सती साध्वी माना गया है। प्रथम पतिव्रता माना गया है। उन्हीं का यशोगान आज तक होता है। वे इतिहासों के स्वर्ण पृष्ठों में अमर हो चुकी हैं। महाभारत के पाठक धृतराष्ट्र को उतना महत्व नहीं देते, जितना मान गांधारी को देते हैं। गाँधारी को वह मान इसीलिए मिला कि उसने पति के लिए अपने प्रभुप्रदत्त चक्षुओं की भी इस लिए उपेक्षा कर दी कि जब पति ही संसार को नहीं देख सकते, तब मेरा भी देखना व्यर्थ है इतना बड़ा त्याग ही गांधारी को भारतीय वाङमय में अमर कर गया। भारतीय नारी की इस मपानता का का एक कारण और भी है और वह यह है कि हमारे अनेकों समाज शस्त्रियों स्वर्ग प्राप्ती में अथवा उनके शब्दों में मोक्ष में नारी को बाधक बताया; परन्तु पुरुष का मोक्ष में बाधक कभी नहीं माना इसका स्पष्ट अर्थ यहीं है कि नारी पुरुष की अपेक्षा कीं ही अधिक जितेन्दिय है और कहीं अधिक आत्मविश्वासी भी है।

देश की सामाजिक स्थिति मातृसत्ता पितृसत्ता के रूप में बदल जाने पर भी, जिस समय पुरुष ने देव तुल्य मानव रूप धारण करके नारी को अपनी छाया मात्र मान लिया था-नारी ने उस समय भी अपनी सहज मुस्कान से पुरुष का स्वागत किया और अपने इस जीवन को देय न मान कर जितने पुरुष सहचारी सहधर्मिणी बनकर अपनी सेवा के बल से पुरुष को परान्त किया। राम और सीता का चरित्र है। समस्त रामायण में राम से अधिक महत्व सीता ने प्राप्त किया है। यह महत्व उसे उसकी सुन्दरता के कारण प्राप्त नहीं हुआ और न ही राज्य महिषी के कारण मिला। यह महत्व सीता की महान् त्याग भावना के कारण उसे मिला। राम वैवाहिक जीवन में आबद्ध होकर भी सीता को पग-पग पर त्याग करना पड़ा और वही त्याग सीता को युगों - युगों के लिए संसार में अमर कर गया। उस युग की स्वार्थ रहित पति परायण नारी ने कभी भी

पति की राह नहीं रोकी, अपितु अपने पतियों की दीप्ति से ही स्वयं को प्रतिबिम्बित करती रहीं ।

यह बातें त्रेतायुग की हैं, कलियुग और सतयुग की हैं; कलियुग में भी ऐसी नारियों की कमी नहीं हैं। गांधी जी की पत्नी कस्तूरबा गांधी का उदाहरण, स्वर्गीय नेहरू जी की पत्नी कमला नेहरू का उदाहरण भी भी इतिहास की निधि बन चुका है ।

अभि प्राय: यही है कि वैवाहिक काल के प्रथम दौरे में जबकि पति-पत्नि संसार के छलकपट से अनजान होते हैं, जीवन एक नए रंग-उन्मादी रंग में सराबोर होता है, उस समय यदि पत्नि विवेकहीन नहीं बन जाती तो कालांतर में एक सफल और सुखद गृहस्थी की संचालिका बनती है। उस समय उसे विवेकहीन करने के लिए केवल उसकी नई उम्र ही कारण नहीं बनती अपितु अनेकों दूसरे कारण भी सामने आ जाते हैं, जो उसे उत्तेजित करके विवेकहीन कर देते हैं। वह विवेकहीनता आत्महत्या भी करा सकती है, चरित्र-भ्रष्ट भी कर सकती हैं और यदि हम में कुछ भी न हुआ तो भी शरीर पर स्वयं ही इतना घातक प्रभाव डालती है कि उसे पागल बना डालती है । यदि उसने विवेक पर काबू पा लिया, धैर्य को नहीं खोया तब उसकी विशेष हानि नहीं हो पाती । इसी लिए वर्णाश्रम धर्म के संस्थापकों ने नारी को उपदेश दिया हैं-"पति के कुल में तुम्हारा दासत्व भी उचित है ।"

नारी पारिवारिक जीवन

भारतीय नारी का पारिवारिक जीवन सर्वत्र एक-नहीं है । वर्तमान सामाजिक व्यवस्था के अनुसार वह कई श्रेणियों में विभाजित है । पहली श्रेणी निम्न वर्ग की है। दूसरी मध्यम वर्ग की और तीसरी प्रथम वर्ग मध्यम वर्ग से ही बनता चला आया है; लेकिन दोनों में वर्ग भेद हो जाने पर आर्थिक समता का अन्त हो जाता है और विषमता बढ़ जाती है। अतः

दोनों के रहन-सहन के दृष्टिकोण सर्वथा भिन्न हो जाते हैं और एक प्रकार से सामाजिक जीवन का ढ़ांचा ही वदल जाता है।

यह आवश्यक नहीं कि विद्या, त्याग-भावना और जितने माननीय गुण हैं:-अपने प्रथम स्तर के कारण यह वर्ग उन गुणों पर भी अपना उतना ही ऊंचा स्तर प्राप्त करले। यह सव तो परिश्रम और मन के विश्वास की वस्तुयें हैं। यही कारण है कि इस वर्ग में त्यागमयी महिलायें तो मिल सकती हैं; लेकिन पुरुष चरित्र-निष्ठ यदा-कदा ही मिलते हैं। उनमें ८० प्रतिशत किसी न किसी प्रकार के दुराचरण लिप्त देखे गए हैं। इतिहास से हमारे कथन की पुष्टि भी होती है। वर्तमान काल में जितनी महिलायें इतिहास में प्रसिद्ध हुई हैं, वह समाज की उसी प्रथम श्रेणी से आयी हैं, जिस श्रेणी को घनिक कहा जाता है। यह स्थिति हमारे देश की ही नहीं, अपितु समस्त संसार की है।

ऐसी महिलायें कितनी धैर्यवान, कितनी कर्त्तव्यनिष्ठ होगी, उनकी कल्पना आसानी से नहीं की जा सकती, जवकि अपने वर्ग की स्थिति के सर्वथा प्रतिकूल उन्हें आचरण करना पड़ता है। इस प्रसंग में विश्वा-विख्यात महिलाओं के नाम भी सुनिए। डा० एनी वेसेंट से पढ़े लिखे सभी पाठक परिचित हैं। यह आचरिश महिला एक धनिक से सम्वध्द थी। विवाह होने के पश्चात् एक वार यह अपने पति के दुर्व्यवहार इतनी तंग आ गयी थीं कि इन्होंने विषपान का निश्चस कर लिया था। इन्होंने विषपान का निश्चय कर लिया था। इन्होंने अपने जीवन चरित्र में लिखा है कि उसी समय मुझे आँतरिक प्रेरणा मिली और ऐसा लगा कि कि कोई दैव शक्ति यह कह रही कि आत्महत्या पाप है और कायरों का कार्य है। अतः तू कष्टों से डर कर आत्महत्या मत कर इसके विपरीत धैर्य धारण कर आत्मसमर्पण का सवक सीख और सत्य अन्वेषण कर। वस नव-यौवन एनी वेसेंट ने विष की वोतल वाहर फेंक दी।

: उनको समय-समय पर अर्न्तप्रेरणा मिलती रहती थी। कई वार उन्हें

प्रेरणा मिली कि सत्य की खोज के लिए वासनाओं का दमन करो। यह उन्होंने स्वयं माना है कि इस स्नेहशील स्वभाव और कोमल शरीर के अन्दर एक नारी है, जिसकी दवी हुई शक्तियां वाहर फूट पड़ना चाहती हैं। यही कारण था कि उन्होंने सत्य की चिर साधना के सहारे संसार को दिव्य संदेश दिया।

ऐनी वेसेंट ने लिखा है—"अपने सत्य की अमूल्य निधि को सुरक्षित अछूता रखना ही मैंने अपना कर्त्तव्य वना लिया है, चाहे इसके लिए मुझे कितना कष्ट क्यों न उठाना पड़े।"

अपने जीवनकाल में यह आचरिश महिला हमारे देश भारत को भी वहुत कुछ दे गयी और विश्व को भी। भारत को राष्ट्रीय कांग्रेस के रूप में उन्होंने शिशु भांति पाला पौसा और शक्ति प्रदान की और विवश को ३०० पुस्तकों का अनूठा साहित्य दिया।

इसी प्रकार जेन एडम्स की कहानी है। इनका जन्म भी एक घनिक में ही हुआ था। एक दिन इनका भवन 'हला-हाडस' पीड़ितों की पीड़िता निवास का केन्द्र वन गया। इन्होने निर्धन जनता की सेवा प्रत्येक क्षेत्र में की और प्रत्येक स्थिति में की। मैडम क्यूरी और इर्वेजलीन वूथ, मैडम मांटेसरी और भागिनी निवेदिता की कहानियाँ हैं। कुमारी हेलन केलर भी ऐसी ही महिलाओं में हैं।

यह दृष्टांत उन महिलाओं के हैं, जिन्होंने सामाजिक क्षेत्र में कार्य किया और इन दृष्टांतों को देने का अभिप्रायः हमारा यह ही कि महिला अवला नही है। वह प्रत्येक क्षेत्र में पुरुष का मार्ग दर्शन कर सकती हैं, परन्तु हमारा विपय व्यापक न होकर, समिति है और दृष्टिकोण नारी जीवन को सच्चरित्र तथा कर्मठता की प्रेरण देता है अतः अपने पूर्व प्रसंग पर आने के लिए विवश होना पड़ रहा है। प्रत्येक नारी का पारिवारिक जीवन पति-गृह से ही प्रारम्भ होता है, पिता-गृह से

नहीं । यह मानते हुए भी कि पति उसके जीवन परिधि है, जिसके चारों ओर उसके जीवन को घूमना हैं, उसका सम्वन्व उत्तरदायित्व पारिवारिक जीवन के प्रति भी है। वहुत वार पारिवारिक जीवन के स्त्रोतों का प्रभाव भी उसके जीवन पर पड़ता हैं वह प्रभाव अच्छा और बुरा-दोनों रूपों में हो सकता है। वह प्रभाव अकेले उसी को नहीं कभी-कभी उसके पति को भी प्रभावित करता है। अतः पत्नि का प्रभाव गुप्त होना अनिवार्य हो जाता है। सामूहिक परिवार-प्रणाली में यह प्रभाव कभी-कभी व्यापक हो जाता है। अतः यदि यह मानकर भी चला जाय कि परिवार प्रणाली का अभ्यस्त नहीं है और किसी भी कारण से एकाकी जीवन प्रणाली पर चलना पड़ रहा है, तव भी घर में पति-पत्नि के अतिरिक्त एक दो तो अन्य व्यक्ति होते ही हैं। यदि उन एक दो अन्य व्यक्तियों को भी परिवार का विशेष अंग मानकर चला जाय तव भी वर्तमान काल में किसी भी नव-वधु के लिए समस्यायें खड़ी हो जाना असंगत वात नहीं है।

इन असंगतियों में रहन सहन प्रमुख है। नारी वदली है। पुरुष भी वदला है। लेकिन उसके वदलने का एक क्षेत्र है। वहुत से पुरुष तो इतने वदल गए हैं कि वह अपने साथ पत्नि को भी क्लवों आदि में ले जाना उचित समझते हैं और पर-पुरुषों के साथ हास-परिहास में भाग लेने के लिए उसे प्रेरित करते हैं; क्योंकि यह कर्म वह दूसरों की पत्नियों के साथ करने में उसे उच्च सभ्यता का प्रतीक मानते हैं; लेकिन जो पत्नियां द्वारा इस मार्ग को दिखाए जाने की अभ्यासी हो जाती हैं, तव पति लोग घवरा उठते हैं। अतः यह समस्या भी नारी के सामने आती है। समाचार-पत्रों में अधिकांश समाचार से ही वड़े परिवारों के आपको पढ़ने के लिए मिलेंगे, जिनका मूल कारण पहले पति द्वारा ही पत्नि उच्छांवल बनाना होता है, पश्चात् वह उसके चरित्र पर संदेह प्रकट करने लगता है। वह यह नहीं दीखता कि पर-पुरुषों से वातचीत के लिए प्रेरित पहले उस ने ही वदला है। पहले मां वदलती है, पुनः बेटी अथवा उसकी वहुयें

बदलती हैं। उदाहरण के लिए यह रहन सहन का स्तर इतना गिर गया है कि एक समय जिस नारी के अंग-प्रत्यंग को कोई देख भी नहीं पाता था, वर्तमान में उसका अर्द्ध नग्न शरीर सभी देखते हैं। घूंघट मुंह से उठकर पहले सर पर गया और उसके बाद सरको भी नंगा करके वह आंचल बहुतों के गले में आया और बहुतों के कंठों से भी गायब हो इसी प्रकार जम्फर छोटा होते-होते यहां तक छोटा हो गया कि कमर का आधे से अधिक भाग नंगा हो नंगा हो गया। साड़ियों चुनाव के लिए देश में नाईलोन की मांग बढ़ रही है। इस प्रकार जब भारतीय रचनायें अपनी वर्तमान वेश-भूषा में बाहर निकलती हैं, तब उन्हें देखकर भारतीय सभ्यता स्वयं ही अपना मुख छिपा लेती है। यदि परिवार में भारतीय सभ्यता के वे एक दो पृष्ठ-पोषक हैं तब वधू के रहन-सहन का प्रभाव क्या उनके हृदयों को दुखित नहीं करेगा। अतः यह भी एक विरोधामारन का कारण बन जाएगा। उस समय किसी भी महिला की अद्भुत् परिस्थिति होती है एक ओर उसे इस रूप में देख कर पति प्रसन्न है चाहे उसे ऐसा पति के कारण ही करना पड़ता हो; क्योंकि वह समझती है कि पति उसको इसी रूप में देखना पसन्द करता है अन्यथा अपनी आदत के कारण वह भटक सकता है। दूसरी ओर उसे परिवार के उन दो या तीन अन्य सदस्यों का भी ध्यान रखना है जो परिवार के अभिन्न अंग हैं। अतः ऐसी परिस्थिति में प्रत्येक महिला को दो प्रकार का अभिनय करना पड जाता है और पड़ जाता है ओर पड़ जाना चाहिए भी। उनका एक रूप--एक वेशभूषा अपने पति के गिए, उसके समय के लिए होनी चाहिए और दूसरी वेश भूषा अपने परिवार के दूसरे आत्माजनों के लिए।

यहाँ यह प्रश्न भी उठ सकता है कि यदि पति अपने क्लबों में अपनी पत्नि को ले जाकर उसे वाचाल बनने के लिए प्रेरित करता है, तब पत्नि का क्या कर्त्तव्य हो जाता है। वस्तुतः स्थिति यह है कि नये समय या वर्त्तमान समय के पति लोग ऐसा अवश्य करते हैं; यदा

नहीं । यह मानते हुए भी कि पति उसके जीवन परिधि है, जिसके चारों ओर उसके जीवन को घूमना हैं, उसका सम्बन्ध उत्तरदायित्व पारिवारिक जीवन के प्रति भी है। वहुत वार पारिवारिक जीवन के स्त्रोतों का प्रभाव भी उसके जीवन पर पड़ता हैं वह प्रभाव अच्छा और बुरा-दोनों रूपों में हो सकता है। वह प्रभाव अकेले उसी को नहीं कभी-कभी उसके पति को भी प्रभावित करता है। अतः पत्नि का प्रभाव गुप्त होना अनिवार्य हो जाता है। सामूहिक परिवार-प्रणाली में यह प्रभाव कभी-कभी व्यापक हो जाता है। अतः यदि यह मानकर भी चला जाय कि परिवार प्रणाली का अभ्यस्त नहीं है और किसी भी कारण से एकाकी जीवन प्रणाली पर चलना पड़ रहा है, तव भी घर में पति-पत्नि के अतिरिक्त एक दो तो अन्य व्यक्ति होते ही हैं। यदि उन एक दो अन्य व्यक्तियों को भी परिवार का विशेष अंग मानकर चला जाय तव भी वर्तमान काल में किसी भी नव-वधु के लिए समस्यायें खड़ी हो जाना असंगत वात नहीं है।

इन असंगतियों में रहन सहन प्रमुख है। नारी वदली है। पुरुष भी वदला है। लेकिन उसके वदलने का एक क्षेत्र है। वहुत से पुरुष तो इतने वदल गए हैं कि वह अपने साथ पत्नि को भी क्लवों आदि में ले जाना उचित समझते हैं और पर-पुरुषों के साथ हास-परिहास में भाग लेने के लिए उसे प्रेरित करते हैं; क्योंकि यह कर्म वह दूसरों की पत्नियों के साथ करने में उसे उच्च सभ्यता का प्रतीक मानते हैं; लेकिन जो पत्नियां द्वारा इस मार्ग को दिखाए जाने की अभ्यासी हो जाती हैं, तव पति लोग घवरा उठते हैं। अतः यह समस्या भी नारी के सामने आती है। समाचार-पत्रों में अधिकांश समाचार से ही वड़े परिवारों के आपको पढ़ने के लिए मिलेंगे, जिनका मूल कारण पहले पति द्वारा ही पत्नि उच्छांवल वनाना होता है, पश्चात् वह उसके चरित्र पर संदेह प्रकट करने लगता है। वह यह नहीं दीखता कि पर-पुरुषों से वातचीत के लिए प्रेरित पहले उस ने ही वदला है। पहले मां वदलती है, पुनः वेटी अथवा उसकी वहुयें

बदलती हैं। उदाहरण के लिए यह रहन सहन का स्तर इतना गिर गया है कि एक समय जिस नारी के अंग-प्रत्यंग को कोई देख भी नहीं पाता था, वर्तमान में उसका अर्द्ध नग्न शरीर सभी देखते हैं। घूंघट मुंह से उठकर पहले सर पर गया और उसके बाद सरको भी नंगा करके वह आंचल बहुतों के गले में आया और बहुतों के कंठों से भी गायब हो इसी प्रकार जम्फर छोटा होते-होते यहां तक छोटा हो गया कि कमर का आधे से अधिक भाग नंगा हो नंगा हो गया। साड़ियों चुनाव के लिए देश में नाईलोन की मांग बढ़ रही है। इस प्रकार जब भारतीय रचनायें अपनी वर्तमान वेश-भूषा में बाहर निकलती हैं, तब उन्हें देखकर भारतीय सभ्यता स्वयं ही अपना मुख छिपा लेती है। यदि परिवार में भारतीय सभ्यता के वे एक दो पृष्ठ-पोषक हैं तब वधू के रहन-सहन का प्रभाव क्या उनके हृदयों को दुखित नहीं करेगा। अतः यह भी एक विरोधामारन का कारण बन जाएगा। उस समय किसी भी महिला की अद्भुत परिस्थिति होती है एक ओर उसे इस रूप में देख कर पति प्रसन्न है चाहे उसे ऐसा पति के कारण ही करना पड़ता हो; क्योंकि वह समझती है कि पति उसको इसी रूप में देखना पसन्द करता है अन्यथा अपनी आदत के कारण वह भटक सकता है। दूसरी ओर उसे परिवार के उन दो या तीन अन्य सदस्यों का भी ध्यान रखना है जो परिवार के अभिन्न अंग हैं। अतः ऐसी परिस्थिति में प्रत्येक महिला को दो प्रकार का अभिनय करना पड़ जाता है और पड़ जाता है और पड़ जाना चाहिए भी। उनका एक रूप--एक वेशभूषा अपने पति के लिए, उसके समय के लिए होनी चाहिए और दूसरी वेश भूषा अपने परिवार के दूसरे आत्माजनों के लिए।

यहां यह प्रश्न भी उठ सकता है कि यदि पति अपने क्लबों में अपनी पत्नि को ले जाकर उसे वाचाल बनने के लिए प्रेरित करता है, तब पत्नि का क्या कर्त्तव्य हो जाता है। वस्तुतः स्थिति यह है कि नये समय या वर्त्तमान समय के पति लोग ऐसा अवश्य करते हैं; यदा

कदा वह भी वाद में पछताते हैं। यदि कोई सोसायटी भले ही वह क्लव ही हो—सामाजिक स्तर की हैं और शिष्ट जन उसके सदस्य हैं, तव तो आपत्ति का कोई कारण ही नहीं, इसके विपरीत यदि वह स्थान केवल विलास-गृह ही है, तव उस स्थान पर जाने की भी कोई नहीं। रही उस दशा में पति की वात। यह एक सच्चाई है कि दुराचारी पति भी अपनी पत्नि से चरित्रवान वनने की आशा रखता है। वह क्लयों अधिकांशता (बुरे क्लवों) में उसे ले जाने के लिए तभी प्रेरित करता है, जव यह समझता है कि अपनी की ओट में वह दूसरों की पत्नियों से सम्पर्क वढ़ा सकता है। ऐसा क्लवों में ही नहीं, अन्यत्र भी पति लोगों को करते देखा गया है जवकि उन्होंने अपने पत्नी पर दवाव डाला है कि अमुक स्त्री से सहेलीपन स्थापित करले। उस दशा भी नारी को अपना धैर्य और सावधानी की आवश्यकता पड़ती है। एक ओर उसे अपनी प्रवृत्ति पर अंकुश लगाए रखना होता है और दूसरी ओर अपने पति की कुरुचि को वदलने का प्रयास भी करना पड़ता है।

ऐसी दूषित सामाजिक जीवन का प्रभाव संतति पर तो वाद में पड़ता है, पहले तो उसके परिणाम स्वयं को ही भोगने पड़तेहैं; क्योंकि वह परिणाम कई रूपों में सामने आते हैं। परिणाम यह होता है कि यदि पति सम्पर्क निम्न था निम्नतर जो विधर्मी भी हो सकता है ऐसे ऐसे परिवार की किसी पत्नी या कन्या से हो जाता है तो उसके खान-पान और रीतिनीति का प्रभाव उस पति पर पड़ना अनिवार्य है। उदाहरण के लिए यदि वह नारी ऐसे परिवार की है जिसमें मदिरा-पान या माँस भक्षण को वुरा नहीं माना जाता तो निश्चय ही वह स्वच्छ पति भी मलक्ष जीवन यापन के लिए विवश हो जाएगा। इसके अतिरिक्त यदि वह और भी गिरी हुई है—वेश्या सरीखी है तो कभी कभी व्यक्ति को अपमानों की आशंका ही नहीं, प्राण हानि का भी सदा रहता है।

इसके साथ-साथ ही यदि वह पति को कथित सहेली परिवार में आने का साहस भी करने लगती है या उसे समय-असमय परिवार में लाया जाने लगता है, तब जीवनपर्यन्त वह पति ही बदनाम नहीं हो जाता, अपितु उसकी बदनामी का प्रभाव उसकी पत्नी तक पर भी पड़ता है। समाज के अन्य लोगों से पहले परिवार के लोगों पर पड़ता है। परिवारी यह सोचते हैं कि हमारी बहू भी शायद चरित्र की गिरी हुई ही है, अन्यथा ऐसी दुश्चरित्र स्त्री को घर में क्यों आने देती है। वह यह नहीं समझपाते कि उनका पुत्र या भतीजा इतना चरित्र हीन हो चुका है चुका है कि वह पत्नी तक को विवश करता है कि वह उस को बर्दाश्त करे—उसे उप-पत्नी माने और इस कार्य में यदि उसने रुकावट डाली तो उसे अपने पिता के घर जाना होगा। ऐसी स्थिति में प्रत्येक समझदार महिला का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि 'सांप मरे, न लाठी टूटे' का उदाहरण अपनायें औ अपना, अपने पति का तथा अपने धन का दुरुपयोग न होने दें; क्योंकि अधिकांशतः ऐसी स्त्रियां दो प्रकार की होती है। एक पति की शोई पूर्व परिचिता या किसी मित्र की चंचल पत्नि और रूपा जीवा प्रवृत्ति सरीखी जिनका सम्पर्क मित्र मण्डली या किसी व्यक्ति विशेष द्वारा कराया जाता है। अतः यह दोनों ही प्रकार की महिलायें परिवार के भास का कारण बनती हैं, प्रत्येक समझदार पत्नी को इनसे बचना ही होता है, अपने पति को बचाना ही होता है।

यूरोप आजकल चरित्र के आधार पर कोई सामाजिक व्यवस्था नहीं है। पुत्र और कन्या-दोनो को ही माता-पिताओं की ओर पूरी छूट है वे किसी भी तरह का स्वच्छन्द जीवन अपनी प्रवृत्ति या इच्छानुसार व्यतीत कर सकते है। इसलिए बाज-बाज महिलायें दिन में दो-दो शादियां तक कर डालती हैं। लगता ऐसा है कि कुछ वर्षो बाद शादी शब्द ही शायद यूरोप से विदा हो जाय। इसीलिए स्थिति यह है कि बूढ़े माता-पिताओं को आराम से मरने के लिए अस्पतालों की शरण लेनी पड़ती है। बाद में यह माता-पिता' शब्द भी शायद शब्द-कोषों से

निकल सकता है। उस समय शायद उन्हें 'राष्ट्रीय सन्तानें, और 'राष्ट्रीय माता-पिता' कहा जाने लगे एक पत्नी पर पुरुष के हासपरिहास में मुक्त-कण्ठ से भाग लेती है, यह जरूरी नहीं कि पति घर पर है या नहीं। इसी तरह एक पति की दशा है। जो पति या पत्नि यह बर्दाश्त नहीं कर सकते। वह एक दूसरे को तालाक देते हैं।

हमारे धर्माचार्यों ने अपने देश के समाज को इसी पतन के गर्त से बचाने के लिए यह व्यवस्था दी थी। पिता को एकान्त में अपनी युवा कन्या के पास में भी नही जाना चाहिए। पर पत्नियों को दूर से ही नमस्कार करके बच जाना चाहिए। परन्तु वर्तमान जन-जीवन में यह व्यवस्था इस लिए छिन्न-भिन्न हो चुकी है क्योंकि मध्यवर्ग के एक क्लर्क को अपनी युवती सहकर्मिणी के साथ कार्य करना पड़ता है और उच्चवर्ग के मिल मालिक या कारखानेदार प्राईवेट सेक्रेटरी महिलाओं को रखने लगे हैं। टाईपिस्ट तो आमतौर से लड़कियां होती ही हैं। ऐसी दशा में किसी पुरुष का सदाचारी रहना संभव सा नहीं लगता। यह तभी संभव है जब कोई पति अत्यन्त धर्म और कर्मनिष्ठ हो। उसे अपने अहं और विवेक का ज्ञान हो और उसका यह अहं और विवेक उसकी पत्नि ही जगा सकती है – सब प्रकार से समझा बुझा कर। इस लिए वर्तमान समय में एक पति का उत्तरदायित्व बहुत बढ़ गया है। यदि वह इस सम्बन्ध में चूक कर जाती है तो न केवल उसका अपना ही विनाश संम्भव है, अपितु पति प्रतिष्ठा और परिवार प्रतिष्ठा–दोनों को आघात लगता है।

आजकल का पति बहुत चालाक है, तार्किक-शक्ति उसके अन्दर है; लगभग यही दशा पत्नियों की है; क्योंकि पर्याप्त पढ़ी लिखी हैं। जहाँ तक विद्या सम्बन्ध हैं दोनो ज्ञानी हैं; लेकिन जहां तक नादानी का सम्बन्ध है, दोनों इसलिए नादान हैं कि उनका धार्मिक ज्ञान न के बराबर है। वे तार्किक केवल लौकिक सुखों तक अथवा इन्द्रियों की

आसक्ति की परिधि तक ही हैं, आत्मा के बारे में वे कुछ नहीं जानते और परमात्मा के बारे में जानने का तो प्रश्न ही पैदा नहीं होता।

उनका ज्ञान ठीक वर्तमान विज्ञान की भांति है विज्ञान मानव के उत्कर्ष के लिए है। उसके कार्यो का सरलीकरण करने के लिए है। वह कार्य विभिन्न प्रकार के हैं। वह यातायात के लिए भी हैं और वनस्पति कारखाने के लिये भी और पहाड़ों को उड़ाकर वाहनों मोड़ने के लिए भी तथा दूर संचार के लिए या नदियों की धारायें व्यवस्था को सुलभ बनाने के लिए भी। लेकिन जब उसी विज्ञान का दुरुपयोग होकर अणु और उद्जन बम बना लिए जाते हैं, तब विज्ञान का उपयोग मानव अपने संहार के लिए करता है–विनाश के लिए करता है– ठीक यही स्थिति वर्तमान ज्ञान की है। वर्तमान ज्ञान न पति को पति बनाता है और न पत्नि को पत्नी। इसीलिए दोनों अपनी स्वच्छन्द-ताओं के लिए तर्क-कुतर्क करते हैं और गन्दे जीवन की ओर भागते हैं।

उनके यही तर्क कालांतर में उनके लिए दुखदायी होते हैं; क्योंकि उनके इन्हीं तर्कों का सहारा उनकी सन्तान लेती है तब वे निरत्तर हो जाते हैं। उस समय अपनी सन्तान को सुधारने का उनके सामने कोई उपाय नहीं रह पाता। इसी का प्रभाव समूचे समाज की भ्रष्टता पर पड़ता है। और पड़ रहा है।

वर्तमान यूरोप और अमेरिका तथा रिपब्लिकन रूस भी–विज्ञान के क्षेत्र में पर्याप्त उन्नति पर पहुंचे और जितने अधिक उन्नति पर पहुंचे, उतना ही उनका सामाजिक ढांचा छिन्न - भिन्न होना शुरु हुआ। यही दशा भारत की है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् देश में शिक्षा का स्तर बढ़ा और वह १.८ पर पहुंचा। जगह - जगह डिग्री कालेज खुले। राज्यों में विश्वविद्यालयों की स्थापनायें हुई। महिलाओं की शिक्षा भी तेजी से बढ़ी। एक शहरी लड़की का बी० ए० और एम० ए० करना एक आम बात हो गयी; लेकिन उस ज्ञान प्राप्ति का लाभ देश को

क्या मिला । छात्रों में चरित्रहीनता बढ़ी और अनुशासन हीनता अपनी सीमा लाँघ गयी । इस स्थिति में यह विद्या के पंडित बनकर भी देश के लिए संकट का कारण बनते जा रहे हैं । यह है विद्या का दुरुपयोग वही दुरुपयोग जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है । इनमें तार्किक शक्ति बढ़ गयी—दोनों में ही, किन्तु धार्मिक शक्ति का अन्त हो गया । परिणाम वहीं हुआ । देश में अनाचार और पापाचार का बोलबाला होने लगा । पतिव्रत धर्म की महत्ता क्या है, उसकी आवश्यकता नारी जीवन के लिए अनिवार्य क्या हैं अथवा मनुष्य को एक पत्नि में निष्ठा क्यों रखनी चाहिए, इस विषय पर यदि इनसे तर्क किया जाय, तब इनके लिए यह निर्थक की बातें हैं । न पवित्रता की आवश्यकता का अनुभव वर्तमान पति करता है और न पत्नि । जबकि ५० वर्ष की आयु होने पर इन्हीं सिद्धांतों पर आधारित धर्म-ग्रन्थों के पन्नों को पुस्तकालयों में खोजते देखे जाते हैं; लेकिन उस समय तक 'चिड़ियां खेत चुगकर' उड़ चुकी होती हैं ।

यदि यह तार्किक प्रवृत्ति वाले स्त्री-पुरुष अपने गृहस्थ जीवन के प्रारम्भ से ही आत्मचिंतन करें तो जीवन की अनेक व्याधा से बच सकते हैं । पति-पत्नी दोनों का ही यह प्रथम कर्तव्य हो जाता है कि एक दूसरे के प्रति विश्वासघात से बचें । किसी भी शंका के निवारण का सुन्दर स्थान उनका विश्रांति गृह है । उस स्थान पर भी गम्भीर स्वर से शंका समाधान करके विश्वास प्राप्त किया जा सकता है । इस प्रकार की समानार्थक संधियों के कारण कभी भी घर में कलह को स्थान नहीं मिल सकता । भारतीय धर्म-ग्रन्थों में लिखा है कि काल, क्लेश और कल्पना की उत्पत्ति कलह द्वारा ही होती है । इस लिए सुख और शान्ति से जीवन-यापन करने वाले स्त्री और पुरुषों को कलह को घर में स्थान नहीं देना चाहिए । यही कलह, धन, धर्म गुण और शरीर को झुलसाने वाली अग्नि है । कभी-कभी यह समस्त परिवार तक को झुलसा देती है—भस्म कर देती है । इस लिए यह अनिवार्य है कि इसका

प्रारम्भ होते ही प्रेम भरे विनय-युक्त शीतल स्वर से कलह को घर से विदा करने की चेष्टा करनी चाहिए । यदि घर में ऐसा आचरण पुरुष करता है तो वह देवता सरीखा है और यदि स्त्री करती है तो वह साक्षात् देवी है।

भारतीय धर्मग्रन्थों के अध्ययन से इतिहास का एक अदभुत् पृष्ठ खुलता है। संभवत: हमारे ऋषिगण नारी द्वारा ही समाज की विषमता समाप्त कराना चाहते थे अथवा दूसरे शब्दों में विषमता से देश को मुक्त रखना चाहते थे। संभवतः इसी कारण देश में "समाजवाद" या 'साम्यवाद' जैसे नारों की आवश्यकता महसूस नहीं की गयी ।

ऋषि, मुनियों की नारियों के लिए व्यवस्था यह थी कि अपने जीवन में तुम्हें समता का व्यवहार करना चाहिए । जिस वस्तु को अपने पति के लिए तथा अन्य परिवारिक व्यक्तियों के लिए, उत्तम समझती हो, नौकरों-चाकरों, भिक्षुओं आदि को भी उसी प्रकार की वस्तु दो और जिसे तुम अच्छा नहीं समझती हो उसे किसी को मत दो। बुरी वस्तु दूसरों को देने का प्रभाव वहुत बुरा पड़ता है। वह लोग अपने मनों में दाता के प्रति दुर्भावना वना लेते हैं। वड़े छोटे का भेद खड़ा होता है और एक प्रकार की प्रतिहिंसा की भावना उनके मनों में अपना स्थान वना लेती हैं। कालांतर में यही जन–आन्दोलन का रूप धारण कर लेती है। वर्तमान में देश में यही स्थिति है। प्राचीन भारत में गरीव-अमीर होने पर भी इस प्रकार के आन्दोलन अथवा क्रांतियां कभी भी जनता की ओर से नहीं होती थीं। इसका मूल कारण एक ही था । प्रथम, लोग संतोषी थे, द्वितीय जन-समाज के अन्दर दया भावना ममत्व का अभाव नहीं था। अत: चरित्र निष्ठ समाज की प्रथा यह थी कि प्रत्येक परिवार तव तक भोजन नहीं करता था, जव तक कि वह यह देख नहीं लेता था कि उसके पड़ौसी के घर भी खाना वन रहा है या नहीं। यह कार्य या यह ध्यान प्राय: गृहिणियाँ रखती

थीं कि उसकी पड़ौसिन किस दशा में है। कितना ऊंचा चरित्र होता था उन महिलाओं का ।

उस समय देश में रूपा जीवा भी होती थीं। उन्हें नगर-वधु जैसे विशेषणों से पुकारा जाता था; किन्तु चरित्र भी दृष्टि से वह भी हीन नहीं थीं। उनका व्यवसाय अथवा कार्य नगर राज्य अथवा गणराज्य के नागरिकों का नृत्य द्वारा मनोरंजन करना मात्र होता था। वह मनोरंजन राज दरवार में भी हो सकता हैं और विशेष राष्ट्रीय उत्सव के समय में भी। इन्हीं नृत्यांग-नाओं के कारण कत्थक, मणिपुरी तथा भरत नाट्यम् जैसी नृत्य कलायें आज देश में जीवित रह सकीं और देश की राष्ट्र्य संस्कृति का अंग वन गया।

जिस समय की यह वात लिखी जा रही है, उस समय देश में नारी-व्यवस्था अत्यन्त कड़ी थी, उस समय भारतीय नारी अन्तःपुर से वाहर जा ही नहीं सकती थी। उस समय हमारे स्मृतिकारों ने उन्हें छः अवगुणों से वचे रहने का आदेश दिया था। तम्वाकू भाँग तथा मदिरादि के सेवन से वचना, दुर्जनों के सम्पर्क से वचना, पति से अलग न रहना, स्वच्छन्दता अथवा स्वतंत्रता से यत्र-तत्र विचरण न करना, दूसरों के घर रात्रिव्यतीत न करना तथा असमय सोने की आदत न डालना। यहीं तक नहीं उन्होंने केवल मांगलिक कार्यों के समय अच्छे भजनादि गाने की छूट तो दी थी, किन्तु उस समय भी नृत्यादि निषेध का था। उन्होंने भांजे, वहनोई, देवर तथा नन्दोई तक से हास-परिहास पर प्रतिवन्ध लगाया हुआ था। उन्होंने अपने पति के अतिरिक्त पर पुरुष के दर्शन, स्पर्शन और सम्भाषण पर भी कठोर प्रतिवन्ध लगाया हुआ था। उनकी मान्यता थी कि यदि कोई ऐसा अवसर आ भी जाता है, तव भी प्रत्येक नारी का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वह नीची दृष्टि करके बात करे। यदि कहीं संयोग पड़ता भी है तो घर की कोई वड़ी महिला और वयस्क वालक साथ होना चाहिए।

है वहां उन्हें करने के लिए संघर्ष करना कोई बुराई नहीं है। अतः परिवार की एक प्रमुखसदस्या होने के नाते उसका प्रथम कर्तव्य परिवार का स्वास्थ्य और उसकी सुख समृद्धि करना है। परिवार के प्रत्येक व्यक्ति के आचरण पर दृष्टि रखनी चाहिए। यह आचरण कई प्रकार के होते हैं। यह आवश्यक नहीं कि परिवार के किसी व्यक्ति के अन्दर दुर्गुण ही हों, अन्य बुराइयां भीं हो सकती हैं। खानपान की अनियमितता भी हो सकती हैं। हृदय में भीरूता भी हो सकती है। कोई क्रोधी भी हो सकता है। कोई बीमार भी हो सकता है। कोई ऐसा भी हो सकता कि समाज में जिसकी निन्दा की बातें सुनने को मिलें अतः इस प्रकारकी सारी बुराइयों को भली महिलायें अपने हाथ में लेकर ही उनका निदान अपना खोजा करती हैं।

प्रत्येक पत्नी का यह कर्तव्य होना चाहिए कि वह अपनीं दिनचर्या में कुछ समय ऐसा अवश्य निकाल ले जिसमें पति से मिलकर परिवार की बातों पर विचार विनिमय कर लिया करे। कोई कैसा भी पति सही यदि उसकी पत्नी नम्रता से उससे यह निवेदन करती है कि आप अपने अमूल्य समय में से थोड़ा समय बचाकर हमें घरेलू बातचीत के लिए रोजाना दे दिया करें, तब शायद वह इसके लिए इन्कार न कर सकेगा। उस प्रसंग में पति की दिनचर्या भी दृष्टि पड़ सकती है।

अपने अनुभव की बात यह है कि कोई भी पति स्वयं बिगड़ने केलिए किसी कालेज में शिक्षा लेने नहीं जाता, समाज के कुछ भ्रष्ट लोग, सज्जन व्यक्तियों को भ्रष्ट करते हैं। वही लोग नशे आदि का दुर्गुण उनके अन्दर पैदा करते हैं और नशा प्रत्येक बुराई की जड़ है ही, इस लिए यह मान कर चलना चाहिए कि ऐसे पति का विवेक अथवा बुध्दि कहीं गई नहीं वह केवल सुप्त कर दी गयी है और जिस व्यक्ति की बुद्धि सुप्त कर दी जाय, तब किसी भी व्यक्ति को या किसी भी पत्नी को ऐसे पति पर क्रोध करने का कोई कारण ही नहीं रहता। ऐसा पति तो सचमुच दया का पात्र होता है। वह एक नयी बीमारी का मरीज होता है, जिसे तीमारदारी की आवश्यकता

हैं, सेवा की आवश्यकता है, ठीक उसी भाँति किसी अच्छी नर्स का आचरण अपने रोगी के प्रति होता है। अथवा जिस प्रकार किसी अच्छी माता का ममत्व अपने शिशु के प्रति होता है। उस समय ऐसे विचार के लिए ताड़ना प्रताड़ना की आवश्यकता नहीं होती है सद्व्यवहार की और इस सद्व्यवहार का फल भी मधुर होता है। यह ठीक ही है कि एक डाक्टर का मृदु व्यवहार जितना मरीज को राहत पहुंचाता है उतना दवाई नहीं पहुंचाती। प्रत्येक समझदार डा० अपना विश्वास मरीज के प्रति जागृत करता हैं। यही विश्वास प्रत्येक पत्नी को ऐसी अवस्था में अपने पति के हृदय में जागृत करना चाहिए। यदि ऐसा विश्वास गति हृदय में जागृत कर दिया जाता है, तव पति स्वयं ही अपने हृदय की कुन्दी अपनी पत्नी के सामने खोल देता है और वह स्वयं यह अनुभव करने लगता है कि अव तक जिस प्रकार का आचरण मैं करता रहा हूं वह न केवल देवी सदृश मेरी पत्नी के प्रति ही अपराध है, अपितु अपने जीवन को छलना भी है, परिवार के प्रति-विशेष कर माता-पिता और सास ससुर के प्रति एक घृणात्मक कार्य कलाप है। ऐसा कार्यकलाप जिसे देखकर और सुनकर उनके हृदयों को ठेस पहुंची है, उनके विश्वास को आघात लगा है। समाज के प्रति तथा देश की विशुद्ध संस्कृति के प्रति भी मैं अपराधी हूं। अतः ऐसा व्यक्ति अपने कृत्य के प्रति स्वयं ही लज्जित होता है, विद प्रकट करता है और उन घृणित व्यसनो से वचने का प्रयत्न भी करता है।

एक वार यदि ऐसा पति उस घृणित व्यसन की वीमारी से आपकी सेवा द्वारा स्वस्थ हो गया, तव भी आपका यह कर्तव्य है कि आप उधर से विलकुल निश्चित न हो जाय, क्योंकि कुछ दुर्गुण विल्कुल छूत की वीमारियों की भांति होते हैं। वह वीमारियां उपचार से दव तो जाती हैं, लेकिन उनके उभर आने की संभावना वनी रहती है। कभी-कभी ऐसे लोग अपने डाक्टर अर्थात अपनी पत्नी तक को चकमा दे देते हैं। अर्थात वह पुनः उसी पंक अर्थात कीचड़ में फिसल जाते हैं और पत्नी को पता भी नहीं चल पाता। इस अवस्था में किसी भी पत्नी का क्रोधित हो जाना अस्वाभाविक नहीं,

लेकिन क्रोध, इस रोग का कोई इलाज भी नहीं। इसके अतिरिक्त जो नहीं संभल सकता, उसे गिरने दो। कह कर भी नहीं छोड़ा जाता। यदि इतना कह कर ही छोड़ दिया जाता है तव विवाह की महत्ता का कोई अर्थ ही नहीं रह जाता। नारी-जीवन की विशेपता का भी कोई मूल्य नहीं रह जाता और समाज में "अपनत्व" को भी कोई स्थान नहीं मिल सकता।

यह एक सोचने की वात है, जिसका आपने वरण किया, जिसे आप ने अपना माना, उसके प्रति अकृतज्ञता अपनाने का आप को अधिकार कहां रहा। इस प्रसंग में एक घटना सुनिये —

एक साधु के पास अत्यन्त सुन्दर घोड़ा था। साधुकी दीनचर्या में यह सम्मलित था कि ईश्वर की आराधना करने के पश्चात् वह घोड़े पर वैठ कर घूमने जाया करते थे। उसी घोड़े पर एक दिन डाकू की दृष्टि वहुत दिनों से लगी हुई थी। अतः एक दिन जव स्वामी जी घोड़े पर वैठ कर घूमने जा रहे थे, तव उन्हें हाय-हाय करता एक वीमार आदमी मिला। उसने स्वामी जी से निवेदन किया कि वह वीमार आदमी है, दवाई लेने जा रहा है। यदि आप कुछ दूर तक उसे घोड़े पर विठा लें तो वड़ी कृपा होगी। यह वीमार आदमी और कोई नहीं था—वही डाकू था जो स्वामी जी का घोड़ा उड़ाना चाहता था।

स्वामी जी ने वीमार को घोडे पर विठा लिया। कुछ दूर चलने पर साघू को घोडे से धकेल कर डाकू घोड़ा ले उड़ा। घोड़ा ले जाते समय डाकू को सम्वोधित करते हुए साघू ने कहा—घोड़ा तुम ले जा रहे हो, ले जाओ; लेकिन इस घटना का जिक्र किसी से मत करना। यदि तुमने ऐसा किया तो जनता में हृदय के दया - भावना समाप्त हो जायेगी और उससे पता नहीं कितने असली वीमारों और दुखियों को नुकसान होगा। क्योंकि जनता उन्हें भी छलिये या वनावटी समझ कर अपेक्षा करने लगेगी। और उसके वाद जव स्वामी जी कुटिया पर आये। राम भजन किया। रात्रि को विश्राम किया और सवेरे जव उनकी आंखे खुली, तव उन्होंने देखा कि घोड़ा अपने स्थान

पर खड़ा हिनहिना रहा है।

तव क्या भारतीय नारी अपने दुर्व्यसनग्रस्त पाने की उपेक्षा करके सेवा भावना का अन्त कर सकती है? ऐसा संभव नहीं और जो महिलाएं ऐसा करती भी हैं, उन्हें जीवन भर पछतानाही पड़ता है। यही समय पत्नी की परीक्षा का होता है, उसकेपतिव्रत धर्म के प्रति निष्ठा का प्रमाण होता है। आप स्वयं सोचिये यदि ऐसे अवसर जीवन में न आयें तव किस के पास क्या प्रमाण है जो हृदय के साथ कह सके कि वह पतिव्रता नारी है। उसका पति जैसा भी कुछ हैं, उसमें उसका अगाध विश्वास है–अनन्त प्रेम है। यह जीवन उसके लिये समर्पित है।

इस परिवारिक जीवन के प्रसंग में कुछ वातें और ध्यान देने योग्य है। जितना अनुभव हमें हो चुका हैं वह वातें हैं कि परिवार से कुछ ऐसे व्यक्ति भी सम्पर्क कर लेते हैं जो विल्कुल ठग वृति के होते हैं। ऐसे व्यक्ति कोई साधू सन्यासी वेषधारी भी हो सकते हैं और पंडितनुमा भी। इन्हें सान तो वहुत दूर की वात है, अल्पसान भी नहीं होता। एक दो संस्कृत भाषा के श्लोक रामायण की दो चार चौपाइयां इन्हें रटी हुई होती हैं, यही इनका सान होता है।

इनमें कुछ वशीकरण विशेषज्ञ होते हैं। कुछ धन दौलत दिलाने में कुशल कुवेर होते हैं। कुछ अनुष्ठानों को कल्याण की राह वताकर स्वयं अनुष्ठान प्रारम्भ कर देते हैं, कुछ तीर्थव्रत के साथ साथ मन्दिर आदि के नाम पर धन वसूल करने का प्रयत्न करते हैं। कभी २ इनके चक्कर में पति पत्नि दोनों ही आ जाते हैं। अत: ऐसे लोगों से भी परिवार को वचाये रखना आवश्यक है। साकार अथवा निराकार, जिस रूप में भगवान की आराधना की जाय एक उत्तम वात है। मन में धैर्य सहित और आत्मा को पवित्रता मिलती है। जप-तप करना भी वुरा नहीं। कम से कम आत्मा और विचारों की मलीनता का हरण होता है, परन्तु जिनके द्वारा कराया जाता है वह तो केवल अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए प्रेरित करते हैं। इसलिए पहला कार्य प्रत्येक महिला का

इतने कठोर प्रतिबन्धों के कारण किसी भी महिला से यह तो अपेक्षा की ही नहीं जा सकती कि वह किसी नृत्य विशेष का प्रदर्शन करे। वह नृत्य चाहे सांस्कृतिक हो या सामाजिक। अतः देश में ऐसे नृत्यों को जीवित ही परवर्तीकाल की नगर वधुओं और नृत्यांगनाओं ने रखा।

यही, स्मृतिकारों की कठोर संयम अपनाने की आशायें। उनकी वे आशायें। किसी सीमा तक वर्तमान काल में उचित भी हैं। कोई भी नारी जितना अपने को संयमी रख कर चलेगी, उसकी स्वयं की महानता तो प्रदर्शित होगी ही, साथ ही किसी भी बुरे आदमी का साहस उसे परेशान करनेका नहीं हो सकता। यदि इसके विपरीत स्वयं नारी ही मर्यादा-भंग का पालन करती हुई कहीं आती जाती है तो उसे चरित्रहीन समझ कर छेड़ने का साहस कोई भी कर सकता है। वर्तमान जन-जीवन के फैशन तो गुण्डा तत्वों को बढ़ावा ही नहीं देते, अपितु वह इसे अपने लिए आमंत्रण भी मानते हैं।

परवर्ती-युग में चरित्रहीनता गुण्डागर्दी इसीलिए नहीं थी कि नारी-जीवन मर्यादाशील था। उस मर्यादाशील जीवन को भंग वास्तव में पुरुषों ने ही किया और वही आज उसका परिणाम भुगत रहे हैं और भुगतेंगे। अतः प्रत्येक भली नारी का यह कर्तव्य हो जाता है कि वह अपने पहनने के वस्त्रों को अमर्यादित न होने दे। उसके पहने वस्त्रों से किसी अंग का प्रदर्शन नहीं होना चाहिए। यदि ऐसा नहीं किया जाता तो किसी आदमी को दोष देना बेकार है; क्योंकि उन वस्त्रों के कारण तो वह यही समझता है कि बाजार में या सभा सुसायटी में यह इसीलिए ऐसे वस्त्र पहनकर आयी है, ताकि लोग इन्हें देखें। उस दशा में सभी समाजिक अपराध पनपने संम्भव हैं। प्रत्येक व्यक्ति ऐसे ही सामाजिक अपराध या पाप करने के लिए अधिक धन चाहता है। अधिक धन की प्राप्ति के लिए कभी-कभी वह जघन्य कृत्य तक करने के

लिए उतारु हो जाता है। वर्तमान समाज में शरावी, डाकू और गिरहकट तथा चोर वढ़ने का कारण भी यही है कि वह वर्तमान जन-जीवन में चरित्रहीन वन चुके होते हैं और चरित्रहीनता को जीवित रखने के लिए धन अधिक पाने की लालसा में वह लोग दुराचरण का सहारा लेते हैं। एक बुराई ने कितनी सामाजिक बुराइयों को एक साथ जन्म दे दिया ?

इन बुराइयों को वर्तमान में न तो समाजवाद रोक सकता है और न साम्यवाद। वह तो वस्तुतः इन बुराइयों को वढ़ाने का अन्तराप्ट्रीय विश्वविद्यालय है। राप्ट्रीय कांग्रेस के काल में भी यह बुराइयां वढ़ी ही हैं। अतः उससे भी कोई आशा नहीं की जा सकती। उसी से नहीं किसी भी राजनीतिक पार्टी से इन सामाजिक बुराइयों को दूर करने की आशा नहीं की जा सकती। रही सामाजिक संस्थाओं की वात। उनका प्रचारात्मक दृप्टिकोण भी अव सामाजिक न रहकर, राजनीतिक ही हो गया है। अतः अव वे भी प्रायः निर्थक हो चली। एक प्रकार से सारा पुरुप समाज की विश्रृंखलता में फस चुका है। नारी मार्ग-दर्शन का कार्य पुरुप के हाथ से कभी का निकल चुका है। उसके हाथ में यदि कुछ है तो नारी-पतन का कार्य है। अतः ऐसी स्थिति में नारी-सुधार का कार्य नारी को ही अपने हाथ में लेना होगा। उन्हें जगह-जगह नारी-रक्षा समितियां, नारी-सुधार-सभा, वाल कल्याण समिति जैसी संस्थायें देश में स्थापित करनी होंगी। साथ ही अपने क्लवों की विधि विधानों में परिवर्तन भी करना होगा। उनकी रूप रेखा और कार्यकलापों को अत्यन्त प्रगतिशील वनाना होगा। और इसलिए हमें दूसरों की बुराई न देखकर स्वयं अपनी बुराइयों पर दृप्टि डालनी होगी। यदि हमने अपने को सुधार लिया, अपने जीवन को संयत और शुद्ध वना लिया, तव अपने परिवार के जीवन को सुधारना कठिन नहीं होगा।

कलकत्ता से गाजियाबाद आने पर यह विचार मेरे मन को सदा मथते रहे और यथाशक्ति मैंने इस ओर प्रयास भी कई रूपों में किया; किन्तु फिर भी यही समझती रही हूं कि जितना कुछ होना चाहिए, नहीं हो पा रहा। उसके कई चरण भी हो सकते हैं। सहयोग का अभाव और गृहस्थ जीवन से समय निकालना। लेकिन वर्तमान स्थिति को देखते हुए अब ऐसा लगता है कि इन कठिनाइयों के होते हुए भी इस गाड़ी को हमें आगे बढ़ाना ही होगा, अन्यथा पुरुषों के गलत मार्ग की ओर बढ़ते हुए यह पग समूचे राष्ट्र को एक दिन वासना की भट्टी में उसी तरह जा झौंकेंगे, जिस तरह एक समय रोमन सरदारों ने प्राचीन रोम को अरबी खलीफाओं ने अरब राष्ट्र कोफ्रांसीसियों ने फ्रांस को झौंका था। यह प्रश्न किसी एक परिवार का नहीं है। प्रश्न समूचे राष्ट्र का है। प्रश्न देश के समस्त नारी वर्ग का है। उन्हें पुरुषों से आज स्वतंत्रता नहीं मिली है; अपितु वासनाजन्य घृणित जीवन मिला है। उनकी स्वतंत्रता और समानता का भाव उन्हें उच्छृंखलता की ओर नित्य प्रेरित कर रहा है।

आज भले ही कोई नारी अपनी हेकड़ी से यह कहे कि हैं पुरुप की दासी नहीं हूं, स्वावलम्बी हूं; परन्तु सच्चाई यह है कि वह वास्तव में किसी की पत्नी नहीं है नहीं है, अग्नि नहीं है। वह जो उसे नहीं होना चाहिए था। जिसमें सम्मान नहीं है, संतोष नहीं है, शील नहीं है। कर्म की प्रधानता नहीं है। धर्म का बाहुल्य नहीं हैं माता का ममतामय हृदय नहीं है तब ऐसे स्वच्छन्द तथा स्वावलम्बी जीवन का लाभ क्या है। ऐसा जीवन तो एक पशु का जीवन जो आज एक की, कल दूसरे की परसों तीसरे की अल्पकालीन पत्नी अपनी वासनाजन्य प्रवृत्ति के कारण बनती रहती हैं आयु की उत्तरार्द्ध में उसकी आंखें तब खुलती हैं, जब वह यह देखती है यह महसूस करती है कि संसार में उसका "अपना" कोई नहीं है। ऐसा अपना जो उसके दुख से दुखी हो, उसके दुख का भागी हो, उसके दुख को दूर करने का उपाय करे। उसे सांत्वना

दे-आराम दे-सेवा करे। यह सेवा उसे अपने या अपनो से ही प्राप्त हो सकती है। अपना पति-अपने पुत्रादि।

यह एक विचारणीय विषय है कि कि स्वच्छन्द जीवन में यह 'अपना' या 'अपने' कहां सुलभ हैं। देश में यह घातक प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है और यह भी महिला वर्ग की ओर से प्रवृति नहीं बल्कि यदा-कदा ऐसे दृष्टांत भी सामने आने लगे हैं कि शिक्षिताओं के अन्दर मद्यपान की लत भी लगने लगी है। यह ठीक हैं उन्हें इस नर्क में ढकेलने का कारण पुरुष हैं; किन्तु यह भी सच है कि इस कलंक से माता-पिता भी नहीं बच सकते; क्योंकि अपनी संतान की ओर से ला-परवाही और उन्हें उचित शिक्षा न देना यह अपराध तो उन्हीं के हैं। यदि माता-पिता संयमी जीवन और चरित्रनिष्ठा की शिक्षा सन्तान को बराबर देते रहें और उनके आचरण का ध्यान रखें, तब ऐसे दुर्गुणों में उनकी सन्तानों का फंसना असम्भव हैं। उनकी यह लाड़ली बेटियां पतीव्रत धर्म क्या चीज है, यह तो कतई समझती ही नहीं साथ ही अब तो यह दलीलें भी देने लगी हैं कि एक व्यक्ति के पल्ले से बंधना भी जीवन के लिए जरुरी नहीं। अत: ऐसी लड़कियां मां-बाप की नाक अपने शहर में ही सबके सामने काट देती हैं और उन्हें शेष जीवन के अत्यन्त अपमानित और तिरस्कृत व्यक्ति की भांति जीना पड़ता है। यह जरूर है कि जो पिता पुत्री के इस अघात को सहन नहीं कर सकते वे या तो स्वयं हत्या कर देते हैं या आत्महत्या कर लेते हैं अथवा उसके प्रेमी को परलोक का रास्ता दिखा देते हैं। समाचारपत्रों में आये दिन इसी प्रकार के समाचारों की भरमार रहती हैं; लेकिन फिर भी समाज की आंखें नहीं खुलतीं। कोई भी धार्मिक या सामाजिक संस्था समाज से बुराई को दूर करने के लिए आगे नहीं बढ़ती

इसलिए हमें फिर यही कहना पड़ता हैं अपने समाज के अन्दर आई इस बुराई को नारियों को स्वयं ही दूर करना होगा।

प्रसंग नारी के पारिवारिक जीवन का काम परिवार में नारी का स्थान सर्वोपरि है। वह घर की मालकिन है। जहां उसे यह अधिकार प्राप्त नहीं

यह होना चाहिए कि ऐसे व्यक्तियों को अपनी, अपने की अथवा अपने परिवार सम्बन्धी कोई गुप्त बात बता कर परामर्श न किया जाय। कभी:कभी ऐसी बातों को चुन कर ऐसे लोग महाअनर्थ खड़ा कर देते हैं। बहुत सी महिलायें ऐसी भूलें कर जाती हैं, उन्हें भविष्य में सावधान रहना चाहिए कि वे अपने पति के सम्बन्ध की, अपने व्यापार के सम्बन्ध की अथवा अपने जीवन के सम्बन्ध की कोई बात ऐसे व्यक्तियों को नहीं बतायें।

जीवन को डायरियां

अपने जीवन की डायरी लिखना एक प्राचीन आदत है। प्रायः प्रत्येक महान व्यक्ति अथवा नेता तथा मंत्रिगण अपने जीवन की डायरियाँ लिखते हैं। गांधी जी भी अपने जीवन की डायरियां लिखा करते थे। वस्तुतः यह डायरियाँ जीवन में घटित विशेष घटनाओं के स्मरण करने के लिए लिखी जाती हैं। बहुत सी महिलाओं को भी इस प्रकार की जीवन डायरियां लिखने की रुचि हो सकती है। वस्तुतः महिलाओं को अपनी डायरी के भरने की पद्धिति पुरुषों से भिन्न रखनी चाहिए। वे अपने समस्त परिवार की डायरी भी भर सकती हैं और अपनी निजी भी।

अपनी निजी डायरी में उन्हें अपनी जन्म तिथि, शिक्षा तिथियां, वैवाहिक तिथि, जीवन में किए गए सत्कर्मो की तिथियाँ, शिशु जन्म तिथि, पति द्वारा किए गए महत्वपूर्ण कार्यो कीं तिथियां, जिनमें व्यापार उद्योग की स्थापना तथा समाज हित में किए गए उत्तम कार्य आदि तो सम्मिलित हैं ही, किसी बुरी आदत या बुरी वस्तु का त्याग भी इस कोटि में आ सकता है; इसके अतिरिक्त कुछ नहीं भरना चाहिए। उन्हें भूलकर भी अपने दामपत्य जीवन के उन स्मरणों को अपनी डायरी में स्थान नहीं देना चाहिए जो मधुर न रहकर कटु रहे हों। जिनके कारण जीवन में मिठास न आकर खटास आती हो। हां, उस काल की रोचक घटनाओं का वर्णन किया जा सकता है, उन्हें स्मरण रखा जा सकता है; लेकिन यदि इसके विपरीत पति की बुराइयां

पति द्वारा भूल चूक से हुई किसी घटना विशेष का वर्णन डायरी में नहीं करना चाहिए। कभी-कभी ऐसी डायरियां महा अनर्थ का कारण बन जाती हैं।

यह अनर्थ भी कई प्रकार से हो जाता है। वर्तमान समय में देश में पढ़ा लिखा ऐसा वर्ग उत्पन्न हो चुका है जो व्यक्ति विशेष चाहे कोई मंत्री हो, धनिक व्यक्ति हों या राजनयिक हों, उनकी डायरियाँ उड़ाने और चुरवाने का प्रयत्न करता है और बाद में उनको प्रचारित प्रकाशित करने की धौंस देकर धन ठगता है।

यदि यह भी न हो तब भी उन्हें कभी सन्तान भी पढ़ सकती है, कभी लड़के-लड़की या उनकी वधुएं भी पढ़ सकती हैं: तब तो जीवन भी दूभर हो जाता है। जो बात उन्हें नहीं बतायी जानी चाहिए, उसका उद्‌घाटन स्वयं हो जाता है। अतः प्रत्येक परिवार में डायरियां ऐसी होनी चाहियें जिन्हें किसी से छिपाने की आवश्यकता ही न हो। ऐसी डायरियां परिवार के इतिहास की अमूल्य निधियां हुआ करती हैं। सदियों तक परिवार के सदस्य को उनकी आवश्यकता हुआ करती है।

मैं ऐसी महिलाएं पतिव्रत-धर्म में पूर्ण आस्था रखने पर पूर्ण विश्वास भी पति में नहीं रख सकती। जो महिला अपने पति की बुराइयों को भी अपनी डायरी में दर्ज करती हों; क्योंकि इसका स्पष्ट अर्थ यह हो जाता कि उनके अन्तर का कोई कोना अभी तक भी पति के उसके प्रति विगत काल में किये गये दुर्व्यहार से काला है और उसने सच्चे मन से उसे क्षमा नहीं किया। अन्यथा ऐसी घटनाओं को स्मरण रखने की अपेक्षा भुलाना ही श्रेयस्कर है।

क्योंकि हमारा वर्तमान विषय नारी समाज है। पुरुष समाज नहीं। अतः हमें नारियों से ही यह अपेक्षा करनी चाहिए कि वर्तमान जीवन में आई घटनाओं को यह दो रूपों में लें, प्रथम यदि घटनाएं जीवन के विपरीत आती हैं, उन्हें वह समझकर ग्रहण करें, ईश्वर हमारे धैर्य, साहस और सतीत्व की परीक्षा ले रहा है। यदि सुखद हैं तब यह मानकर चलें कि ईश्वर हमें और भी अच्छे कर्म करने के लिए प्रेरित कर रहा है ताकि उसके दिये धन का हम सदुपयोग करें,

दूसरों के कल्याणार्थ उसका व्यय करें। जो महिलाएं इतनी निष्ठा प्रकृति में रखकर चलती हैं: उनके सामने संकट आते ही नहीं। यदि आते भी हैं तो ईश्वर उनकी सूझबूझ इतनी प्रखर कर देता है कि वह संकट अधिक कष्टदायक नहीं बन पाते। इसलिए हमारे धर्माचार्यों ने बार बार समाज के पुरुषों को यह सलाह दी है कि परिवार पर या निज पर आये संकट के समय गृहणी से परामर्श अवश्य लेना चाहिए। वस्तुतः इसका मूल कारण यह था कि वे लोग यह मानते थे कि नारी के अन्दर धैर्य की विपुलता होती हैं और संवेदना तथा साहस की वह साकार मूर्ति होती है।



नारी का सामाजिक जीवन

व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी है। अतः संसार में उसके दो रूप होते हैं। एक व्यक्तिगत और दूसरा सामाजिक। यही बात महिलाओं के बारे में भी है। उसका एक जीवन अपना निजि या परिवारीय होता है और दूसरा सामाजिक जाति-भेद या वर्ग-भेद के हिसाब से इसके रूप पृथक हो सकते हैं, लेकिन विचारधारा में प्रायः साम्यता ही होती है।

इस सामाजिक जीवन में प्रत्येक महिला का वास्ता सभी प्रकार की महिलाओं से पड़ता है। सम्पर्क में आने वाली कोई महिला अत्यन्त विदुषी होती है। कोई दम्भी प्रवृति की होती है। कोई कुटनी सरीखी होती है तो कोई महा मूर्ख अथवा कोई अत्यन्त सरल हृदया भी होती है। परन्तु अधिकाँश महिलाओं में एक प्रवृति अवश्य पायी जाती है कि वे अपने को सौन्दर्य सम्राज्ञी तो समती ही हैं साथ ही मिथ्या-भाषी भी होती हैं।

समाज की इन नारियों के मिलने के भी भिन्न-भिन्न स्थल हैं। इनका सम्पर्क पास पड़ौस के कारण भी हो सकता है। यदा कदा किसी मांगालिक उत्सव आदि पर भी सम्पर्क हो सकता है। परिवारीजनों की रिश्तेदारियों और अपने पति के मित्र की पत्नियां आदि भी हो सकती हैं। इसके अतिरिक्त धनाड्य लोगों के लिए सम्पर्क स्थल क्लब है और सामान्य जनों की महिलाओं के लिए सम्पर्क स्थल घरेलू गोष्ठियाँ हैं, जबकि अपने घरों से अवकाश का समय निकालकर एक दूसरी सहेली के घर जाकर अपनी विचार गोष्ठी जमाती हैं।

ऐसी गोष्ठियों में कभी-कभी बड़े-बड़े भेद खुल जाते हैं। वह भेद किसी व्यक्ति विशेष या महिला विशेष के चरित्र से भी सम्बन्धित हो सकते हैं और किसी परिवार विशेष से भी उनका सम्बन्ध हो सकता है। इन गोष्ठियों में महिलाओं का स्वर आलोचक का अधिक होता है। जितना आनन्द उन्हें किसी की आलोचना में आता हैं, उतना आनन्द अन्य किसी सांसारिक या सामाजिक विषय में नहीं आता। इसके अतिरिक्त विगत-दो-चार दिनों में या आजकल में उन्हों ने जो कुछ सुना है। उसको दूसरों के सुनाये बिना उन्हें चैन नहीं पड़ता।

सुनाने का ढंग भी उनका भिन्न ही होता है। एक बात को यदि साधारण ढंग से कह दिया तब वह बात ही क्या हुई। वे तो उसे समाचार पत्रों के सम्पादको की तरह खूब बढ़ा-चढ़ा कर सुनाना पसन्द करती हैं।

इन गोष्ठियों का दूसरा विषय होता हैं अपना राम रोना। उसमें अपनी सासों की आलोचना भी होती है और पतियों को भी लानतें दी जाती हैं। नन्दों को अपनी पूर्व जन्म की शत्रु बताया जाता है।

यदि ऐसे प्रसंगों के लिए उचित अवसर नहीं होता तो अपने जीवन संस्मरण, किसी महिला के सन्तान होने पर दुख प्रकट करना अथवा सन्तानों की आलोचनाएं शुरू हो जाती हैं। अद्भुत–अद्भुत विषय और अद्भुत ही तर्क वितर्क चलते हैं। यह कोई आवश्यक नहीं कि गोष्ठी में एक विषय पर ही वार्तालाप चलता रहे। एक विषय की समाप्ति या किसी निर्णय पर पहुंचने से पहले दूसरा और उसी के साथ तीसरा प्रसंग भी छेड़ा जा सकता है।

यह मध्यम श्रेणी के लोगों के घरों की गोष्ठियो की दशा है। अब रही उच्च श्रेणी की महिलाओं की गोष्ठियों की बातें। इनकी गोष्ठियों के स्थान प्रायः क्लब होते हैं। पहले महिलाओं के पृथक क्लब नहीं होते थे। बड़े घरों की महिलाएं प्रायः अपने पति के साथ या स्वतंत्र रूप से, वे जो अपने को स्वतंत्र अथवा प्रगतिशील समझती थीं, अकेले ही पुरुषों के क्लबों में जाती थीं। अब कुछ शिक्षित महिलाओं ने अपने क्लबों की पृथक रूप से आवश्यकता महसूस

की है। अतः कुछ महिला क्लब खुले हैं। अन्यथा प्राचीन क्लब अपनी सम्पन्नता, अपनी पत्नी की सुन्दरता का या तो विज्ञापन करने के साधन थे या जो वह काम घरों में नहीं कर सकते थे, उन्हें वहाँ करते थे। अत- इन्हें विचार-स्थल की संज्ञा तो दी ही नहीं जा सकती।

किसी भी नारी का समाज सम्पर्क प्रथम यह दो स्थान होते हैं, अन्य स्थानों का नम्बर बाद में आता हैं। अतः प्रत्येक भली नारी का यह कर्तव्य हो जाता है कि वह ऐसी विचार गोष्ठियों में अत्यन्त सतर्कता बरते। अपनी ओर से तो उसे यही सतर्कता रखनी चाहिए कि अपनी या अपने परिवार की चाहे कोई बात व्यक्तिक हो या व्यापारिक हो दूसरी किसी भी महिला के सामने प्रकट न करेस्मरण रखना चाहिए कि ओठों निकली बात के कोठों चढ़ने में देर नहीं होती अतः अपना घरेलू रहस्य किसी अन्य महिला पर प्रकट करना अत्यन्त नादानी है। ऐसा भेद खुलने पर कभी-कभी परिवार बड़े बड़े झंझटों में पड़ कर हानि इसलिए उठा बैठता हैं कि बहुत से व्यक्ति जिस बात का रहस्य स्वयं नहीं खोल पाते, वह उस बात का भेद जानने के लिए अपनी पत्नी की सहायता लेते हैं। उसे समझा देते हैं कि अमुक व्यक्ति या अमुक व्यक्ति की पत्नी से वह सहेली या बहन का सम्बन्ध कायम करले और फिर बातों ही बातों में इस बात का पता लगाये। कई बार तो चरित्र सम्बन्धी ही नहीं, व्यापारिक रहस्य भी इसी प्रकार खुलते देखे गये हैं। दूसरे शब्दों में इसी का नाम सामाजिक जासूसी भी है। इसलिए प्रत्येक समझदार पत्नी का प्रथम कर्तव्य यह होना चाहिए कि इस प्रकार की महिलाओं से सतर्क रहे।

दूसरे प्रकार की महिलाएं वे होती हैं, जिनका चरित्र निम्न स्तर का होता है। इनका कार्य पर पुरुष की प्रशंसा करना होता है। आश्चर्य तब होता है जबकि कुत्सित कार्य में बड़े बड़े घरों तक की महिलाओं को लिप्त देख जाता है। बम्बई का नानावटी काण्ड जिस समय अदालत में चल रहा था जिन लोगों या महिलाओं ने गवाहों के बयानों को पढ़ा है, वे स्वयं ही समझ गये होंगे कि इस काण्ड का रहस्य क्या था और नानावटी पत्नी का सम्पर्क प्रेम आहूजा से कराने में उसकी बहिन का कितना हाथ था। अतः एक पत्नी-

व्रता महिला को तो ऐसे संभाषण में कोई रूचि कदापि लेनी ही नहीं चाहिए ऐसे संभाषणों का प्रभाव मन को मलीन और बुद्धि को नष्ट करने वाला होता है। प्राचीन भारत साहित्य में ऐसे संभाषण करने वाली नारियों को कुटनी या उस प्रवृति की नारी संज्ञा दी गयी है। अतः इस प्रवृति की नारी से भी सदा सतर्क रहना चाहिए और बचना चाहिए। साथ ही उससे सदा के लिए सम्पर्क समाप्त भी देना चाहिये।

अब रही तीसरी प्रकार की वह नारी जो अपने पति के चरित्र या कार्यकलाप की बुराइयां पराये घर जाकर करती हो। उसे बिल्कुल बुद्धिहीन समझना चाहिए, क्योंकि जब उसमें इतनी बुद्धि भी नहीं कि वह यही नहीं सोच सकती कि यहां इस प्रकार की बातें करने का क्या लाभ होगा, तब उससे बुद्धिमानी की क्या आशा कीं जा सकती है। ऐसी बात यदि वह अपनी माता या पिता से करती है तब तो स्वाभाविक है, क्योंकि निश्चय ही वह उसके पति को समझाने का प्रयास करेंगे; लेकिन अन्य महिला क्या उपाय कर सकती है। अत: गोष्ठी के लिए यह महिला भी उपयुक्त नहीं हैं।

तीसरी प्रकार की महिलाए वाचाल प्रकृति की होती हैं। इनसे यदि बचा भी न जाय तब भी सतर्क रहना आवश्यक है, क्योंकि कभी-कभी इनकी वाचालता हानिकारक बन जाती है। यह कई रूपों में हानिकर हो सकती है। कभी-कभी ऐसी महिलाओं की वाचालता का क्षेत्र घर के पुरुष समाज तक बढ़ जाता है। कभी अपने मुंह से अनंगल बातें निकाल कर हृदय पर चोट भी पहुंचा सकती है।

इनके अतिरिक्त एक गप्पी और दम्भी प्रवृति की नारियां होती हैं। यह दोनों भी अनुपयोगी हैं। कभी एक को गप्प मंहगी पड़ जाती है तो कभी एक का दम्भ दुखदायी बन जाता है। कुछ ऐसी स्त्रियां कभी-कभी सम्पर्क में आ जाती हैं। जिनका उद्देश्य गोष्ठी में भाग लेना न होकर किसी परिवारी या उस स्त्री के पति पर उसकी दृष्टि हो अत: ऐसी स्त्री से भी सावधान रहने की आवश्यकता है।

यह बातें साधारण गोष्ठियों की हैं। अतः इन गोष्ठियों में प्रमुखता उन नारियों को ही दी जानी चाहिए, जिनका व्यक्तित्व महान हो, आदर्श उच्च हों, विचार स्पष्ट और मधुर हों। जिनके मुख से किसी की निन्दा के शब्द न निकलते हों। जिसकी धर्म के प्रति आस्था हो। जिसके अन्दर नारी सुलभ लज्जा हो। जो अकारण हंसने वाली न हो, जो अकारण भवें चलाने वाली न हो। जिसके प्रत्येक शब्दों से गाम्भीर्य टपकता हो, जिसके हृदय में दूसरों के लिए ममता हो, सहानभूति हो, जो भूलकर भी अपने पति अथवा अपने किसी परिवारी जन की निन्दा न करती हो। जिसका जीवन धर्मप्रधान हो और जो समाज हित में रूचि रखने वाली हो।

बहुत सी ऐसी नारियां सम्पर्क में आ जाती हैं जो ईर्ष्यालु प्रवृति की होती हैं। इनसे भी बचना जरूरी है, क्योंकि यह किसी न किसी प्रकार की चोट किये बिना नहीं रहती। यह कुपित होने पर घर २ बुराईयाँ भी कर कर सकती हैं और घर की किसी महिला को बदनाम भी कर सकती है। ऐसी नारियाँ कर्कशा और मधुर दोनों स्वभावों की होती हैं। इनके हृदय की थाह पाना असंभव है। प्रकट में तो ये अपनी बहनें सी या सहेली सी बनी रहेंगी और परोक्ष में आपकी गर्दन पर छुरी भी फेरती रहेंगी। अतः ऐसी महिलाओं का सम्पर्क भी त्याज्य ही है।

रही क्लबों की महिलाओं की बात, इन्हें तो यदि सौन्दर्य विज्ञापन कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। इनमें चरित्र सम्बन्धी अथवा धार्मिक विचार गोष्ठियां का क्या काम? अलबत्ता अब एक नयी परिपाटी यह अवश्य चल पड़ी है कि अपने वार्षिक समारोहों में किसी नेता या लेखक अथवा किसी पत्रकार के विचार सुनने के लिए उसे आमंत्रित करते हैं या किसी विशेष भ्रमण के अनुभव सुनने के लिए बुला लेते हैं अन्यथा इसमें भी ज्ञान आदि की कोई चर्चा कभी नहीं होती। जहां तक नारी जीवन का सम्बन्ध है इन क्लबों में कभी-कभी स्वकीया और परकीया का भेद भी भुला दिया जाता है। अतः प्रयास यह होना चाहिए कि इन दोनों की गोष्ठी स्थलों की रूप रेखा को

बदला जाय। इनमें जीवन लाना अत्यन्त आवश्यक है और इनकी कार्य प्रणाली में स्वच्छता लाना भी जरूरी है। यदि ऐसा हो जाता है तो देश के समाज सुधार के लिए यह स्थान अत्यन्त उपयोगी स्थल बन सकते हैं। उस समय निष्क्रिय लोग या तो वहां जाना छोड़ देंगे, अथवा वह स्वयं सक्रिय होकर कर्मठ नागरिक बन जायेंगे।

विचार गोष्ठियों में समाज सेवा

वर्तमान में भी विचार गोष्ठियों द्वारा समाज सेवा की जा सकती है। यदि कोई महिला किसी प्रकार के संकट में है तो उसकी सहायता कई प्रकार से की जा सकती है। उदाहरण के लिए पति के कुटेवों के कारण कोई महिला अपने जीवन से निराश हो चुकी है तब उसको धैर्य बंधाया जा सकता है। पति के सुधार के उपाय बताये जा सकते हैं। उस समय उसमें सबलता का संचार होगा, निराशा कम हो जायेगी और जीवन के प्रति आस्था बढ़ जायेगी।

इसी प्रकार यदि यह अनुभव होता है कि कोई महिला अत्यन्त अन्ध विश्वासी है और स्वयं उसके अन्दर अन्ध विश्वास के कारण ऐसी भावनाएं विद्यमान हैं जिनके कारण समाज का अहित हो सकता है। अतः ऐसी महिलाओं को समझना श्रेयस्कर है। उन्हें बताना चाहिए कि सर्वोपरि सत्ता ईश्वर है। उसके अतिरिक्त अन्य दूसरी शक्ति किसी लोक में नहीं है। अतः केवल एक उसी परमात्मा की आराधना ही करनी चाहिए। कल्पना कीजिये जो लोग महिलाओं द्वारा बलि आदि दिलाकर उनके कल्याण का मार्ग उसे बताते हैं वह कितना बड़ा पाप करते हैं। क्या ईश्वर किसी जीव की हत्या का आदेश दे सकता है। मांसाहारी लोग प्राय यह तर्क देते हैं कि कुछ जीवों को परमात्मा ने मनुष्यों के आहार के लिए ही उत्पन किया है। यदि ऐसा होता तब प्रत्येक शिशु प्रारम्भ से ही मांसाहारी बनता, लेकिन देखा यह जाता है कि प्रत्येक शिशु भले ही पशु-पक्षियों का हो प्रथम आहार माता का दूध है। उसके पश्चात उसके माता-पिता को जो वस्तु खिलाते हैं, धीरे धीरे उसी का आदि बनता जाता है।

ठीक यही दशा मनुष्य की है। शिशु को प्रथम माता दूध का मिलता है, पश्चात अन्न। वह स्वयं कभी भी अपनी इच्छा मांस के प्रति व्यक्त नहीं करता। यह बुरी आदत उसको उसके माता पिता सिखाते हैं। वह लोग ऐसी क्यों करते है आदतन वस्तुतः यह आहार उन लोगों का था जिन्हें अन्न सुलभ नहीं था। जगंली लोगों के लिए और या उन देशों के लोगों के लिए जिनके यहां अन्न नहीं होता। अतः किसी भी धर्म ग्रन्थ में इसका वर्णन कहीं नहीं पाया जाता भारत में इसका प्रचार उन्हीं लोगों के सम्पर्क के कारण हुआ। पश्चात लोगों के अन्दर यह भावना घर कर गयी कि यह शक्ति वर्द्धक आहार है। जबकि सच्चाई इसके विपरीत है। अनेक बीमारियां तो इससे उत्पन्न होती ही हैं, बुद्धि को भ्रष्ट भी करता है। महिलाओं को यह पुरुषों से भी हानिकारक है उनके अन्दर तामसी प्रवृति इसी कारण बनती हैं और यह प्रवृति पता नहीं कितनी बुराईयों को इनके अन्दर जन्म देती है। अतः महिलाओं को इस से बचना चाहिए और बचाना चाहिए।

प्रसंग सम्पर्कगोष्ठियां का था। इसकी रूप रेखा यदि बदली नहीं जाती है, तब भी प्रत्येक महिला का यह दायित्व है इनमें चर्चित अनर्गल बातों की ओर ध्यान न दे। प्रयत्न यह किया जाय कि इनमें चर्चा के विषय निर्धारित हों। इससे परस्पर ज्ञान का आदान- प्रदान होता हैं। उदाहरणं के लिए यदि एक महिला अपने पति की आलोचक है उसकी आलोचना सही हो सकती है पति बुरा हो सकता है उस महिला के साथ सहानुभूति रखना भी अनिवार्य है लेकिन उसे अपने प्रतिशोध को बदलने की अथवा उसके रूप को बदलने की सलाह तो दी ही जा सकती है। उसे यह तो समझाया ही जा सकता हैं कि पति की इस बुराई को वह एक बीमारी के रूप में ले और विनम्र बनकर उसका उपाय करे। घर में कलह करने अथवा उस कलह को दूसरों को दिखाने से क्या लाभ हो सकता है।

वस्तुतः यदि गोष्ठियां चाहें तो समाज का बड़ा उपकार कर सकती हैं। महिलाओं के कर्तव्य भावना भरने और सरकार से महिला उपयोगी कार्य

कराने के लिए भी विवश किया जा सकता है। प्रारम्भ में समाज सेवा के दायरे को बढ़ाया जा सकता है। वह भी इस मान्यता के साथ कि परमात्मा ने मनुष्य को जीवन केवल मात्र मोज करने के लिए नहीं दिया है, अपितु इस लिए दिया है कि वह उसकी सृष्टि में उसके एक सहायक का पार्ट अदा करे। अतः चाहे घरेलू महिला गोष्ठी हो अथवा विचार विमर्श का स्थान कोई क्लब आदि हो, पवित्रता का वातावरण अवश्यम्भावी है। मेरे कहने का अभिप्राय: यह नहीं कि उन्हें बिल्कुल नीरस ही बना दिया जाय अथवा क्लबों को तपोवनों या सन्यास आश्रमों का रूप दे दिया जाय। आशय केवल यही है कि जहां पर चार महिलाओं का मिलन होता है, वहां एक दूसरे के ज्ञान से लाभ उठाया जाय और उस लाभ की सीमा सीमित न रखकर विस्तृतकर दी जाय।

ऐसी गोष्ठियां एशिया के दूसरे देशों में भी होती हैं और यूरोप तथा अमेरिका में भी, ऐसी महिला संस्थाएं हैं जो मात्र अपने देश के नागरिकों की भलाई का ही ध्यान नहीं रखतीं, अपितु विश्व के पीड़ितों को सहायता पहुंचती हैं।

जापान आदि देशों में भी ऐसी गोष्ठियो के विभिन्न रूप होते हैं। आम-तौर से जापानी महिला की प्रवृत्ति कलात्मक है। अतः घर सजाने की कला, फूलों से स्वयं और घर को सुन्दर बनाने की कला का तो परस्पर आदान-प्रदान होता ही है, उन्होंने अपने बच्चों के लिए भी क्लब खोल रखे हैं।

वास्तव में जापानी बच्चों को शुद्ध आचरण और नम्र व्यवहार की शिक्षा माता-पिता प्रारम्भ से ही देते हैं। अतः प्रत्येक जापानी घर में जहां कन्याएं मुस्करा कर अतिथि का स्वागत करती हुई मिलेंगी, वहां जापानी बालक शरीर का आधा भाग झुका कर अतिथियों की अभ्यर्थना करता हुआ मिलेगा। इसके साथ ही बच्चे को सफाई के नियम, देश की बातें और कठोर जीवन का अभ्यासी भी साथ ही बनाया जाता है। जापानी बालकों को कभी भी विभित्स और भयानक कहानियां नहीं सुनाई जातीं। इसलिये जापानी बच्चों के अन्दर भय नाम की कोई वस्तु ही नहीं होती। प्राय: वहां भूकम्प आते हैं, जमीन के

अन्दर गड़गड़ाहट होती है। मकान झूला बन जाते हैं, परन्तु जापानी बालक के लिए प्रकृति की यह लीला भी एक खेलमात्र ही होती है। अधिकांशतः उनके खिलौने भी घर के ही बने होते हैं।

छोटी-छोटी जापानी बालिकाएं अपने घर के फटे-पुराने कपड़ों से सुन्दर से सुन्दर गुड़ियां बना लेती हैं। जापानी बच्चों को ऐसे खिलौने खेलने के लिए दिये जाते हैं जिनसे उनके मस्तिष्क का विकास हो। प्रत्येक जापानी नारी निकम्मा या निठल्ला जीवन अपनाना अभिशाप समझती है।

महिला कल्याण केन्द्र तो अलग, हमारे देश में शिशु कल्याण केन्द्रों का भी अत्यन्त अभाव है। नयी दिल्ली के बाल-क्लब को छोड़ कर बंगलौर का राम-कृष्ण मिशन केन्द्र किसी दृष्टि से अच्छा है। परन्तु उससे कितने बच्चों का कल्याण हो सकता है ? महिला कल्याण केन्द्र और शिशु कल्याण केन्द्र तो देश के शहर में होने चाहियें।

अस्तु, विषय नारी के सामाजिक सम्पर्क का है। अतः घरेलू गोष्ठियों और क्लबों के पश्चात् नारी का सम्पर्क विवाह आदि सरीखे मांगलिक कार्यों के अवसरों पर दूसरी महिलाओं से होता है। इस अवसर पर भी प्रत्येक गृहिणी को सजग रहने की आवश्यकता है। पहली बात तो यह है कि प्रसन्नता के अवसर की आड़ में अश्लीलता को पराकाष्ठा तक पहुंचा दिया जाता है। अतः उस अश्लीलता को रोकना जरुरी है। वह अश्लीलता चाहे मांगलिक गीतों के नाम पर हो या नाते-रिश्ते के आवरण में हो। वातावरण को सुमुधर बनाना और बात है, अश्लीलता का प्रदर्शन और बात इसलिए महिला समाज में इसके सुधार की भी आवश्यकता है।

इसके अतिरिक्त गृहिणी का यह कर्तव्य हो जाता है कि आगन्तुकाओं को मान दे। ऐसे अवसर पर मान न देने की भूल कभी नहीं करनी चाहिए। एक भी अपने को अपमानित समझने वाली महिला प्रतिशोध के लिए तैयार हो सकती है और अनर्थ खड़ा कर देती है।

तीसरा सम्पर्क होता है समाज से हाट बाजार अथवा मेले ठेले में। यहां नारी समाज ही नहीं, उनका वास्ता पुरुष समाज से भी पड़ता है। अतः उस अवसर पर अत्यन्त सावधानी बरतने की आवश्यकता हैं। पहली सावधानी वेश-भूषा अथवा परिधान की है। किसी भी महिला को यह नहीं भूलना चाहिए कि उसका श्रृंगार अथवा भृकुटि-विलास या नाज-नखरे कह लीजिए एक मात्र उसके पति के लिए होता है, जनता में प्रदर्शन करने के लिए जनता में प्रदर्शन करने का ध्येय तो रुपा जीवा का होता है। अतः परिधान स्वच्छ संतुलित और मर्यादित होना चाहिए। विभिन्न प्रकार के जूड़े और अर्द्ध नग्न शरीर का प्रदर्शन गुन्डों का ही नहीं, भद्र जनों को भी कुमार्गी बनाने में सहायक होता है। स्त्री स्थिति में एक साधारण बुद्धि वाला पति अपनी देवी के आकर्षण को हेय समझ कर उस चंचलता की कल्पना करने लगता है। अतः वेष-भूषा सदैव संयत और पूर्ण होनी चाहिए।

इसके बाद चलने-फिरने का नम्बर आता हैं। आपकी चाल भी शीलता से भरी होनी चाहिए। इधर-उधर आंखें मटकाना या मुंह पिचकाना आदि शीलता को प्रकट नहीं करते। यही बात बोलचाल में होनी चाहिए। अपने पति से उस समय बातें भी अत्यन्त गम्भीर और सीमित स्वर में करनी चाहियें, क्योंकि बाजार के न जाने कितने कान आपकी बातों को सुनते हैं। हैं। उस समय नखरे से बातें करना या पति की बातों उपेक्षा अपनी बात को ऊपर रखना बुरा हैं। बहुत सी हमने ऐसी औरतें भी देखी हैं कि अपनी शान बघारने के लिए ऐसे अवसर पर अपने पति को झिड़क तक देती है और चूंकि पति लोग चाहे और अवसर पर पत्नि की झिड़की खाना पसन्द करें या न करें, लेकिन ऐसे अवसर वह अपनी इज्जत के कारण मौन ही रह जाते हैं। यदि उत्तर भी देते हैं तो बड़ी मिन्नत भरे स्वरों में अतः कोई भी भली पत्नी इस तरह का आचरण सार्वजनिक स्थल पर अपने पति साथ नहीं करती।

कोई-कोई महिला तो इस से भी भयंकर भूल कर बैठती है, जब वह किसी महिला के सामने पति को न झिड़ककर किसी अन्य पुरुष के सामने झिड़क बैठती हैं।

इसके दो परिणाम निकल सकते हैं। पहला तो यह कि उस समय तो पति देवता खामोश हो जायं, लेकिन घर आकर अच्छा उत्तर दें। दूसरे यदि जिस व्यक्ति के सामने पति को झिड़का है, यदि वह सत्पुरुष है तो पति को कायर और उस पत्नी को बेशर्म या और कुछ समझ सकता है। यदि वह गुण्डा टाईप का है तो घर और गलियों के चक्कर भी लगा सकता है। अतः एक थोड़ी सी असावधानी का भयानक परिणाम निकलते देर नहीं लगती।

यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि भगवान ने जिव्हया खाद्य-पदार्थों के रसों के ज्ञान के लिए दी है और शिष्ट-शब्दों के प्रयोग के लिये दी है। उन शब्दों के प्रयोग के लिए जिनमें नम्रता है। और माधुर्य है और यही नारी जीवन का महान् गौरव है।

कभी मेंहमानों के सामने ऐसी स्थिति में सम्पर्क आ पड़ता है, जबकि वे मेंहमान विभिन्न साथियों, आदतों और प्रकृतियों के होते हैं। अतः उस समय भी बड़ी संभाल की आवश्यकता होती है और गम्भीरता तो रखनी पड़ती ही है, अन्यथा स्वयं, पति और परिवार की मर्यादा का आंकलन दूसरे लोग हल्का करके लगाते हैं।

बहुत बार ऐसे अवसर भी आते हैं, जबकि स्वयं दूसरे घर मेंहमान बन कर जाना पड़ता हैं। उस दूसरे घर सभी प्रकार की प्रकृतियों की महिलाओं से सम्पर्क हो सकता है। जिनकी रुचियों का, आदतों का या चरित्रों का ज्ञान पहले नहीं होता। अतः प्रत्येक चतुर नारी का कर्तव्य उनसे सचेत रहना है। उनमें बहुत सी एसी हो सकती हैं जो परिवार की या निजि बातों को घुमा-फिरा कर पूछने का प्रयत्न करें। इसलिये बातचीत में सावधानी बरतनी आवश्यक है। उन्हें यह भी अनुभव न होने दिया जाय कि उनकी उपेक्षा की जा रही हैं और आन्तरिक बातों की जानकारी भी उन्हें नहीं देनी चाहिए।

कभी जीवन में यदि विदेश-प्रवास का अवसर मिले तब तो सतर्कता की स्थिति और भी अधिक व्यापक हो जाती है। उस स्थिति में अपने समाज

और धर्म के साथ-साथ देश के रीति-रिवाजों—दूसरे शब्दों में अपनी सांस्कृतिक परम्पराओं की भी रक्षा करनी पड़ती है और कभी-कभी एक लम्बा तार्किक प्रसंग छिड़ जाता। उदाहरण के लिए आपसे पूछा जा सकता है कि आपके देश में नारी की सामाजिक स्थिति कैसी है? उसकी शिक्षा की प्रगति कैसी है? प्राचीन भूत-प्रेत सम्वन्धी मान्यतायें क्या अब भी उसके मस्तिष्क में विद्यमान है। नारी के धार्मिक, राजनितिक और सामाजिक विचारों में क्या अन्तर आया है? नारी के आर्थिक क्षेत्र में आने के कारण आपके समाज पर क्या उचित या अनुचित प्रभाव पड़ा?

वस्तुत: उनके यह तर्क बहुत वजन दार हैं। पहली बात तो यह है कि यूरोप में पति को उतना महत्व न तो कभी प्राप्त रहा और न वर्तमान में है, जितना भारतीय पति को। इसके प्रमुख कारण कुछ भी हों, लेकिन सच्चाई यही है कि वहाँ नारी सदा विलास का साधन मात्र रही है, इसलिए वह स्वतन्त्र और स्वच्छन्द रही।

रही वर्तमान अवस्था की बात वर्तमान अवस्था तो यहां और भी विभत्स हैं नरक जैसे दृश्य वहां देखे जा सकते हैं। वहां नारीपूर्ण रुपेण स्वतन्त्र हैं। एक कन्या अपने माता-पिता के सामने ही मित्रों से हंसी मजाक करती है। उनके साथ घूमने जाती है और कई कई दिन तक घर से बाहर रहती है। इसका प्रथम कारण तो वहां सदाचार की हीनता है जो युगों से चली आरही हैं। दूसरा कारण है नारी का स्वालम्बी जीवन और तीसरा कारण हैं पुरुषों की अपेक्षा नारियों की जनसंख्या की अधिकता।

वर्तमान युग जितने भी युद्ध अथवा युद्धो जैसे संघर्ष हुए हैं, वे अधिकतर यूरोप की भूमि पर ही हुए हैं और विगत दो महायुद्धों १९१४ से १९१९ और १९३९ से १९४५ में पूर्णपतन और रशियन जनसंख्या का जितना ह्रास हुआ है, उसने तो इन देशों का सामाजिक ढांचा ही बदल दिया है। किसी किसी देश में तो नारियों की जनसंख्या पुरुषों से तीन गुनी अधिक हो गई है। इन महिलाओं को अपने से जातीय अपने देशवासी या धर्मावलम्बी पुरुष

दुर्लभ हो गए हैं। अतः वे इंडियन या अफ्रीकन—काले लोगों से शादी करने के लिए विवश हो चुकी हैं। ऐसी दशा में व्यवस्थित सामाजिक ढांचा और वह भी ऐसा ढांचा जिस में पति को देव तुल्य माना जाता है, कहां तक संभव है। इस लिए नारी को विवश होकर स्वावलम्वी भी बनना पड़ा।

भारत के मध्यम वर्ग में भी नारी की स्थिति लगभग ऐसी ही स्वावलम्वी हो चली है। इस स्वावलम्वी जीवन को भारत की पढ़ी लिखी नारियां, नारी की प्रगतिशीलता का सूचक मान कर बड़े-बड़े तर्क प्रस्तुत करती हैं। उन्हें अभिमान है कि आज नारी प्रत्येक क्षेत्र में पुरुप के साथ काम करके अर्थोपार्जन कर रही है। वह पुरुप की दासी नहीं है—चेरी नहीं है। यदि पुरुष चाहे तो साथिन मान सकता है और वह भी बरावरी के आधार पर। कितना थोथा तर्क है यह उनका। इसका स्पष्ट अर्थ यह हुआ कि क्योंकि पुरुष अपनी कमाई खिलाता था, इस लिए वह उसकी दासी बनी हुई थी, ठीक उसी तरह जिस तरह कोई चरित्रहीन नारी बनी होती हैं। उसमें परस्पर प्रेम का लेशमात्र भी अंश नहीं था। वह कभी शायद यह नहीं सोचती कि वे स्वतन्त्र किस से हुईं ? पुरुष से कहना उन्हें यह चाहिए कि एक पुरुप से स्वतन्त्र दूसरे की दासी बनने के लिए।

कितनी प्रगतिशील नारियां ऐसी हैं जो स्वावलम्वी हैं और अत्यन्त उन्नत विचारों की भी हैं और पुरुषों को दासियां भी नहीं। शायद आधा प्रतिशत भी नहीं। सौदो सौ यदि ऐसी निकल भी आयेंगी, तव उनके चरित्र का विश्लेषण करने से दो ही वाटें स्पष्ट होंगी। पहली यह कि वे एक नहीं, न जाने कितने पुरुषों की दासियाँ हैं। दूसरे यह कि अपनी आयु के वे उस दौर में आ गई है कि कोई पुरुष उनका स्वामी बनने के लिए तैयार ही नहीं होता और उनके अत्यन्त विफल जाते हैं। जो महिलाएं पुरुषों के साथ कार्य करती हैं और अविवाहित भी हैं तो क्या वे प्रगतिशीला, केवल प्रगतिशीला बनी अविवाहित रह सकती हैं ? शायद नहीं। यदि नहीं तो यह थोथी दलीलें क्यों। जव कि प्रकृति ने नारी पुरुष के शरीर की रचना ही एक दूसरे के पूरक होने की

द्रष्टि से की है तो चाहे कोई गतिशीला हो या प्रगतिशीला उसे पुरुष पर निर्भर होना ही होगा।

यदि सच्चे तन, मन से अपने पति पर निर्भर होती हैं, तब उसे भी अपनी पत्नी को हृदय की स्वामिनी मानना ही होगा। अन्यथा दुराचरण के मार्ग तो दोनों के लिए ही खुले हैं, लेकिन अच्छा यही होगा कि इस दुराचरण को देश की संस्कृति के साथ नत्थनी किया जाय।

अस्तु प्रसंग पर्यटन और वहाँ संभावित सम्पर्क और तर्कों का था, 'क्योंकि जैसा हमने ऊपर लिखा है, इस प्रकार के विचार हमारे समाचार पत्रों में इन तथाकथित प्रगतिशिलाओं के छपते रहते हैं और उन्हें विदेशी महिलायें भी पढ़ती हैं। अतः वे विदेशी महिलायें भारतीय संस्कृति से अपरिचित होने के कारण, उन प्रगतिशिलाओं के विचारों कों ही भारतीय संस्कृति के अध्याय मान बैठती है। अतः ऐसे देशों में जाने से पहले यह जरूरी है कि अपने देश की संस्कृति का सरन होना चाहिये और उस देश के समाज की जानकारी कर लेनी चाहिये।

अभी कुछ समय पहले अमेरिका सर्वोच्च न्यायाधीश वारेन भारत आये थे। आल इंडिया रेडियों पर उनका भाषण कराया गया। जब उनका भाषण समाप्त हो गया तब रेडियो अधिकारियों ने कहा कि अच्छा हो श्रीमती जी भी अपने कुछ विचार हमारे देश वासियों के सामने रखें। कारण जानते थे कि इस मामले में श्रीमती जी बिल्कुल कोरी हैं। अतः न्यायाधीश महोदय ने बड़ी सुन्दरता से पत्नी की रक्षा की। बोले— "बात यह है कि हम दोनों में एक समझौता हुआ है और वह यह है कि घर में यह बोला करें और मैं केवल सुना करूं और यह सुना करें। इसलिये उचित यही रहेगा कि हमारे आपसी समझौते को चलने दिया जाय।"

अधिकारी वारेन की इस युक्ति पर हंस रहें थे और श्रीमती वारेन मुस्करा रही थी। यह काम होता है समझदार पति का। हरेक पति इतना

समझदार हो सकता है, इस बात को न मान कर अपनी तैयारी भी कुछ न कुछ अवश्य रखनी चाहिये।

कभी-कभी ऐसे अवसरों पर बहुत हल्के और अद्भुत् प्रश्न सामने आ जाते हैं। मान लीजिये कोई महिला यह भी पूछ सकती है कि हमारे देश की महिलाओं की भाँति आपके देश की महिलायें भी ऐसी बहुत सी हैं जो बाल कटवाने लगी हैं। बात ठीक भी है। अब यह काम आपका है कि लम्बे केशों की सुन्दरता पर एक छोटा सा व्याख्यान भी दे डालें और कुछ सुन्दर जूड़ों के वर्तमान चित्र और प्राचीन काल के मूर्ति-चित्र, जिनके अलंकार का प्रारम्भ ही जूड़े से हुआ हो—उन्हें भेंट कर दें। इस कार्य से आपका ही गौरव नहीं बढ़ेगा, अपितु देश की कीर्ति भी बढ़ती है।

सम्पर्क स्थलों में एक वह संस्थायें होती हैं जहाँ धार्मिक अथवा सामाजिक स्तर पर ज्ञान का प्रचार किया जाता है। वहाँ वक्ता की बातों को ध्यान से सुनना चाहिये, आलोचकों की ओर से भी कान बन्द नहीं करने चाहियें। कभी-कभी कोई आलोचक भी अत्यन्त लाभकारी बात कह जाता है या सीधे वक्ता महोदय से पूछ बैठता है।

सम्पर्क स्थलों में तीर्थ स्थलों को भी लिया जा सकता है। प्रायः ऐसे स्थानों पर देश के विभिन्न भागों से स्त्री-पुरुष आते हैं यह ठीक हैं कि वर्तमान में तीर्थ स्थलों को भी सैर-गाहों का रूप दे दिया गया है, किन्तु फिर भी धर्म भावना से लोग आते-जाते हैं। ऐसे स्थानों पर साधुओं से अवश्य बचना चाहिये। वास्तव में यह लिखना ऐसा है जिसमें धूर्तता भी अच्छी तरह रंग जाती है। कोई भी अच्छा साधु अपना तपस्या-स्थल एकान्त स्थान चुनता है। भीड़-भाड़ या ऐसे स्थान को वह नहीं चुनता जहां मनुष्य उसे जाकर तंग करें ऐसे स्थानों पर तो अधिकतर ठगों का ही बाहुल्य रहता है। ऐसे स्थान पर ठग तो हिप्नारिज्य और मैस्मोरिज्य तक भी जानकार होते हैं, जिन्हें भूल से करामाती साधू समझ लिया जाता है। अतः तीर्थ दो बातों के लिये लाभकारी है। पहली बात देव दर्शन और स्नान ध्यान और दूसरे अपने देश

के उन लोगों के जीवन और प्रकृति की जानकारी का परिचय जिनका दूसरे स्थानों पर परिचय तभी मिल सकता है, जब वहाँ जाया जाय।

शिशुओं से सम्पर्क :-

शिशुओं के से सम्पर्क होना तो वास्तव में नारी-जीवन की प्रथम साध है। नारी एक ऐसी शक्ति है जो देश को सबल और निर्बल बना सकती है प्रारम्भ में एक सुन्दर शिशु उसकी गोद में एक सुन्दर खिलौना मात्र है; लेकिन यही खिलौना एक दिन राष्ट्र निर्माता बन सकता है, सफल शिक्षा-शास्त्री या वैज्ञानिक बन सकता है और कुशल व्यापारी भी बन सकता है निठल्ला बन कर राष्ट्र के लिये भार भी बन सकता है — देश को लांछित भी कर सकता है। इसको जैसा रूप दिया जायेगा, वैसा ही बनेगा। कर्मठ व्यक्ति और निठल्ला नागरिक।

यही बात कन्याओं के पालन-पोषण में भी निर्भर है। उन्हें साहसी विदुषी और सच्चरित्र भी बनाया जा सकता है और कर्कशा भी। प्रत्येक माता का यह कर्तव्य है कि उनका लालन-पालन इस दृष्टि से करे कि जिन्हें पराये घर जाना है, दूसरों के बीच रहना है। अतः प्रत्येक प्रकार के संयम की शिक्षा देना अनिवार्य है।

शिशु काल में भी कभी भी बच्चों को ऐसी कहानियां नहीं सुनानी चाहिये जो कोरी काल्पनिक हों, जिसमें भूत-प्रेतों के किस्से हों, राजकुमारी और राजकुमारियों और परियों की कथायें हों। इससे इनके कोमल हृदय पर बुरा प्रभाव पड़ता है। इसके साथ ही किसी भी काल्पनिक शब्द या आकृति से शिशु को डराना भी नहीं चाहिये। इससे उनका दिल और हृदय—दोनों कमजोर होते हैं।

प्रत्येक माता पिता का यह कर्तव्य है कि बुरा होते हुये भी अपने पति की किसी बात का वर्णन अपने बच्चों के सामने न करे, इससे पिता के प्रति बच्चे के अन्दर से श्रद्धा का भाव समाप्त हो जाता है और जीवन भर वह

बात उसके दिमाग में चक्कर काटती रहती है। कभी-कभी ऐसा भी देखा गया है पिता के ताड़ने पर बच्चे ने उसी बात पर को लेकर पिता पर व्यंग्य किया है अतः प्रत्येक माता कर्तव्य यह हो का जाता है कि वह अपनी संतान के हृदय में पिता के प्रति श्रद्धा पैदा कराये।

प्रारम्भिक कुछ पुरुषों में हमने कलकत्ता की एक महिला के उदाहरण इसलिये दिये थे कि उसे एक कर्मठ नारी बनने की प्रेरणा निरन्तर उसकी माता से मिलती रही। अतः वह घोर संकट काल में भी न तो उपन्यासकार प्रेमचन्द के नारी पात्रों की भांति आत्महत्या की ओर बढ़ी और न ही प्रतिशोधात्मक रूप अपना कर चरित्रहीनता का आश्रय लिया। आश्रय लिया केवल धैर्य का। उस कुशल सेनापति की भांति जो सेना के साहस को बढ़ाता हुआ कहता है— "प्रतीक्षा करो, साहस रखो, अन्तिम विजय हमारी ही होगी।"

यही उस महिला ने किया सैनिक रूपी अपनी इन्द्रियों को हताश न होने देकर विजय के लिये उन्हें आश्वास्त रखा और जीवन-रूपी-संगम में अन्तिम विजय प्राप्त की। अन्यथा देखा यह जाता है कि ऐसी स्थिति में यदि और कुछ भी नहीं तो बहुत सी महिलाओं को अर्द्ध उन्माद या हिस्ट्रिया रोग के दौरे पड़ने शुरु हो जाते हैं।

११वीं शताब्दी में ईसाई पादरियों ने स्त्रियों को घोर ब्रह्मचर्य की शिक्षा देनी प्रारम्भ की। रोमन कैथोलिक धर्म उन दिनों भिक्षु और भिक्षुणिओं के रूप में बदल गया था, लेकिन अपने ब्रह्मचर्य काल को वह भिक्षुणियाँ सफल नहीं कर सकीं। इसके लिये उन्होंने अपने शरीर को दग्ध भी किया, सूखा क गड्डियों का ढाँचा भी बना डाला, लेकिन परिणाम यही निकला कि कुछ क उन्माद हो गया और कोई दूसरे रोग की शिकार बनी, किसी ने शादी करके भिक्षूणी धर्म निर्माण कर लिया। तब एक नारी जिसका विवाह हो चुका हो, जिसे पति-पत्नि सम्बन्ध का ज्ञान भी हो, इतनी धैर्यवान बन जाय, यह उसकी आत्मिक-शक्ति की श्रेष्ठता का ही प्रतीक है। यह वही शक्ति हैं जो उसे

उसकी माता से प्राप्त हुई थी। अतः बच्चों को यदि महान बनाना है, विद्वान बनाना है तो उनके ऊपर सतर्क दृष्टि रखना अत्यन्त आवश्यक है।

बच्चा अत्यन्त सरल, अत्यन्त निर्दोष आत्मा वाला जीव होता है। उसके मन में भी अपने माता के प्रति जिज्ञासा की भावनायें उत्पन्न होती रहती हैं। वह भी माता के प्रत्येक क्रिया-कलाप पर दृष्टि रखता है अतः उसे अबोध जानकर किसी भी माता का यह कर्तव्य नहीं है कि वह उसके योग्य न जानने योग्य बातों को उसे जानने दें, क्योंकि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, सीखने और जानने से ही उसे ज्ञान प्राप्त होता है। अतः यह आवश्यक हो जात है कि आसपास का वातावरण जिसका प्रभाव बच्चों के कोमल हृदयों पर पड़ सकता है, स्वच्छ रहने दिया जाय।

मनुष्य तभी वास्तविक मनुष्य बन सकता है, जब उनका शारीरिक मानसिक और नैतिक विकास अच्छी तरह से हुआ हो इसी में मनुष्य की महत्ता निहित होती है। इसी महत्ता के कारण मनुष्य बुद्धि मान-धैर्यवान और निर्भिक बन कर जीवन में आने वाली चिन्ताओं, परेशानियों और भय से मुक्त रहता है।

वास्तव में पांच से सात वर्ष की आयु बच्चे के लिए इतनी कोमल आयु होती है कि उसे कैसा भी बनाया जा सकता है। इस आयु में बच्चे को जितनी ज्ञान की, साहस की और वीरता की कहानियां, बातें और पुस्तकें दी जायेंगी, बच्चे के मस्तिष्क पर उनका गहरा प्रभाव पड़ेगा। इस अवस्था में बहुत से माता-पिता प्यार में बच्चे को बिगाड़ भी देते हैं। उदाहरण के लिए एक अनुभव हीन माता बच्चे के पिता को दिखाकर कहती है-"इनके मार के भाग आ, जा इनके कान तो पकड़ ले।" ऐसी प्यार भरी बातें अत्यन्त विषाक्त होती हैं, ऐसा भूल कर भी किसी माता को नहीं करना चाहिये और न ही किसी पिता को।

प्रायः देखा जाता है कि अधिकांश माता-पिता झूठ बोलते या बच्चे के चोरी करने के तथ्य को स्वीकार करने में हिचकिचाते हैं। वास्तव में कटु

सत्य को स्वीकार करने में माता-पिता की हिचक का चारण चोरी शब्द से सम्बन्धित लाछन की भावना है। ऐसा भी देखा जाता है कि यदि बच्चे ने कुछ पैसे चुरा लिये या एक दो बार झूठ बोल दिया तो उसे अधिक महत्व नहीं दिया जाता। परन्तु वह नहीं सोचते कि यह बुराई हैं, जिसे तिरोहित नहीं करना चाहिए। एक छोटी चोरी भी चोरी है, एक छोटा सा झूठ भी बच्चे के अन्दर यह प्रवृत्ति क्यों उत्पन्न हुई इसका कारण खोजना आवश्यक है।

इसका सबसे बड़ा कारण बच्चे के प्रति उपेक्षा है। यह उपेक्षा उसके प्रति तब होती है जब पति–पत्नि में कलह का वातावरण होता है और बच्चों को उन दोनों की ओर से समुचित प्यार नहीं मिल पाता। इसका बच्चे के पिता का शराबी होना भी है और दूसरा कारण भी माता के संरक्षण में पलना भी है। दोनों स्थितियों में बच्चा अपने को अरक्षित समझता है। इसके अतिरिक्त दूसरा कारण है, बच्चे के ऊपर माता–पिता की अधिक डांट–फटकार अर्थात् बच्चे के ऊपर माता–पिता द्वारा सख्ती बरता जाना। बहुत से माता–पिता की धारणा यह है कि बच्चे के ऊपर जितनी सख्ती बरती जायेंगी, उसकी जितनी पिटाई की जायेगी, वह उतना ही अच्छा बनेगा। वह यह नहीं सोचते कि बच्चे के प्रति किया गया उनका यह व्यवहार बच्चे के मन में उनके प्रति कट्टरता और विद्वेष की भावना भर रहा है। यह भावना बच्चे के हृदय में कभी–कभी इतनी बढ़ जाती है कि वह मां–बाप तक से घृणा करने लगता है। यहीं तक नहीं वह उन सब चीजों से, उन सब बातों से और उन सब सिद्धांतों और उसूलों से घृणा करने लगता है जो शासन या अनुशासन की निशानियां हैं।

कालांतर में ऐसे बच्चे बड़े होकर अनुशासनहीन बनते है। उनमें प्रत्येक स्थान पर प्रतिकार की भावना जगती है और उसमें से एक संख्या ऐसी निकलती है जो अपराधी जीवन की आदि होती है। माता–पिता की सेवा भावना तो उनके अन्दर से कभी की समाप्त हो चुकी होती है, वह तो यदि बदला न ले—यही बहुत है।

इसके अतिरिक्त दूसरा एक कारण और भी है। माता-पिता का अधिक लाड़-प्यार भी बच्चे के अन्दर बुराइयां पैदा करना हैं।

कुछ बच्चे चोरी करने में उत्साह का अनुभव करते हैं। चोरी के लिए वे योजना बनाते हैं और तिकड़म अपनाते हैं, उसमें वे आनन्द का अनुभव करते है। इसीलिए वे बार-बार इस अपराध को करते हैं।

निर्धनता भी चोरी का कारण है। मनचाही वस्तु का प्राप्त न होना भी चोरी की भावना को जन्म देता है। प्रायः मानसिक दृष्टि से हीन बच्चे भी चोरी और झूठ बोलने की आदत से युक्त पाये जाते हैं। यदि एक बच्चा चोरी कर लेता है अथवा झूठ बोलता है और इसमें वह पकड़ा नही जाता, तब वह दुबारा यह अपराध करने के लिए उत्साहित हो जाता है।

इन सब कारणों को दूर करने के लिए बच्चे को धमकाना, पीटना पुलिस का भय दिखाना आदि बेकार है। यह उपाय अधिक कारगर होते नहीं देखे गये। इसके कारण कुछ लड़के घर से भाग गये, कुछ ने डरकर आत्महत्या करली-सुधार कुछ नहीं हुआ। इसके लिए कारगर उपाय पहला तो यह है कि माता-पिता अपना आचरण ठीक रखें और दूसरा उपाय यह है कि बच्चे के अन्दर अभाव की स्थिति उत्पन्न न होने दें। यदि बच्चे को आप पैसा नहीं देते और वह दूसरे बच्चे को चीज खाते देखता है, तब स्वाभाविक रूप उसकी इच्छा भी जागृत होगी; किन्तु अभाव वश वह विवश होगा अतः उसे प्राप्त करने का कोई न कोई उपाय करेगा ही और निश्चय ही वह उपाय अच्छा नहीं होगा।

विद्रोही बच्चा

विद्रोह का स्वभाव मनुष्य का ही नहीं, पशु-पक्षी का भी है। मनुष्य में तो बचपन से ही आदत विद्यमान होती है। जब किसी विशेष कार्य करने के लिए बच्चा उत्सुक होता है और उसकी वह इच्छा पूरी न हो तो स्वभावतः उसके अन्तर में क्षोभ की प्रवृत्ति का जन्म होता है। उदाहरण के लिए यदि

बच्चे की इच्छा के विपरीत उसे स्नान कराया जाता है। अथवा उसे खेलने से रोका जाता है, तब विरोधाभास की भावना का जन्म उसके मस्तिष्क में होता है और वह भावावेष आकर चीखना और चीजों को तोड़ना-फोड़ना शुरू कर देता है। ऐसा वह उस समय भी करता है जब इच्छित वस्तु अर्थात् वह चीज उसे नहीं मिलती जिसे वह लेनाचाहता है। जमीन पर लेटना, रोना और हाथ पैर पटकना उसके क्षोभ का दिग्दर्शन ही है। तीन और चार वर्ष की आयु होने पर क्षोभ ही क्रोध का रूप धारण कर लेना हैं। उदाहरण के लिये बच्चा आपसे कोई चीज मांगता है-पहले डांट दिया जाता है, किन्तु बाद में उसे वह वस्तु दे दी जाती है, तब बच्चा क्रोध में आ चुका होता है और इन्कार करता है-"मुझे नहीं लेना है।" उस समय उसका स्वाभिमान जग चुका होता है और अपनी प्रसन्नता व्यक्त करने के लिये वह बेचैन होता है।

वस्तुत: अंह भाव का प्रदर्शन बच्चा कई प्रकार से करता है, प्रत्येक माता-पिता को उसकी गति-विधि पर बारीकी से ध्यान देना चाहिए। यह एक आश्चर्य की बात मनोविज्ञान के मनीषियों ने इस में जितना अनुसंधान किया है, उसका परिणाम यह निकला हैं कि ऐसे बच्चे अपने जीवन में ८० से ९० प्रतिशत की संख्या में सफल रहते है और अपनी महत्वकांक्षाएं पूरी करते हैं, विपरीत उन बच्चों के जो 'जैसा कह दिया-मान गये' या मन चारकर बैठ गये उनमें कुछ कर बैठने के साहस का अभाव होता है वह कोई भी निर्माण कार्य स्वयं करने की स्थिति में रहते।

बच्चे की रूचि की जानकारी खिलौनों द्वारा अच्छी तरह जानी जा सकती है। यदि उसे खिलौनों की दूकान के सामने खडा कर दिया जाय तो वह इच्छित खिलौने स्वयं ही चुन लेगा। वस्तुत: यह खिलौने ही उनका भावी संसार होते हैं। उसके भविष्य के निर्माण में सहायक होते हैं।

छोटे बच्चों से जहां तक व्यवहार की बात है, प्रत्येक माता-पिता को यह भी ध्यान रखना चाहिए कि अल्पायु के शिशु को अपने साथ सिनेमा आदि न ले जायें। बच्चे को ताड़ना पांच या सात वर्ष की आयु तक ही दी

जा सकती है। इसके बाद उससे धीरे-धीरे समानता जैसा व्यवहार प्रारम्भ कर देना चाहिये-स्मृतिकारों का कथन भी यही है-"लालयेत् पंच वर्षाणी दस वर्षाणी ताड़येत् प्राप्ते षोड़ष वर्षाणी, मित्रवत् वदाचेन् ।"

लालन-पालन पर विशेष ध्यान तो सदा ही रखना उचित है; किन्तु पांच वर्ष तक विशेष ध्यान रखना चाहिए। उसके बाद १० वर्ष तक ताड़ना, ताड़ना अर्थ मारपीट नहीं, अपितु समझाना-बुझाना भी है। इसके पश्चात् उससे मित्र जैसा व्यवहार करना चाहिए। बहुत से कार्यो में उसकी सलाह भी लेनी चाहिये। और कुछ उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य उसे सौंप भी देने चाहिएं।

यह उसका शिक्षा-काल होता है। अतः यह आवश्यक हो जाता है कि उसकी शिक्षा की प्रगति पर ध्यान रखा जाय। उसकी मित्र-मण्डली पर भी ध्यान रखा जाय कि वह कैसे लड़कों का साथी है। उचित यह रहता है कि उसकी जानकारी उसके गुरू लोगों से ली जाय।

अक्सर देखा यह जाता है कि बहुत से माता-पिता अपनी कार्य व्यवस्था के कारण यह देख ही नहीं पाते कि उनके बच्चे का शिक्षा-काल कैसा चल रहा है। उसकी शिक्षा की प्रगति कैसी है? उसके अन्दर उसके साथियों की बुराइयों ने तो जन्म नहीं ले लिया है।

प्रत्येक माता-पिता का यह कर्तव्य है कि बच्चे के सामने वे कोई विवाद-स्पद प्रसंग अपने बीच में न उठायें। इसका प्रभाव बहुत बुरा होता है। कई माताओं को हमने अपने बच्चे को इस प्रकार का ताना देते सुना है-"तू ही क्या अपने बाप से कम रहेगा। जैसा तेरा बाप है, वैसा ही तू भी बनेगा-आदि-आदि।" इन बातों का प्रभाव बच्चे पर गहरा और बुरा पड़ता है। अपने पिता के विगत इतिहास के प्रति उसकी जिज्ञासा जाग्रत होती है। अतः इन बातों से सदा बचना चाहिये। उसे अपने या उसके पिता के बारे में कोई जानकारी नहीं देनी चाहिये। केवल उत्तम कार्यो की जानकारी दी जा सकती है, निम्न कार्यो की नहीं। ❊

नारी जीवन और सदाचार

वस्तुतः सदाचार ही नारी जीवन का सार है। जिस नारी जीवन में सदाचार नहीं, वह जीवन ही बेकार है। जीवन के भोगों और मर्यादा रहित आनन्दों में लिप्त होना अथवा उनमें निरन्तर वृद्धि करते जाना–भय और कष्टों को आमंत्रित करना है। जो व्यक्ति जीवन को प्रकृति की देन मान कर धार्मिक भावना को हृदयगंम कर जीवन–यापन करते हैं, उन्हें कष्ट कभी नहीं सताते; क्योंकि कष्टों को भी वह भगवान की एक परीक्षा मानकर उनका निदान करते हैं–हताश नहीं होते। किसी भी नारी का वह जीवन व्यर्थ है जिसमें उसकी निन्दा हो। अतः जीवन श्रेयस्कर वही है जिसके समाप्त होने पर भी दूसरों को उसका अभाव खटकता रहे।

वास्तव में नारी जीवन उन पुष्पों के समान होना चाहिये जो सदैव अपनी सुगन्ध और पराग से उद्यान को सुगन्धित और शोभा युक्त रखते हैं। नारी संसार का एक महान् आश्चर्य रही है। उसका अध्ययन संसार का सर्वोत्तम अध्ययन माना जाता है। धर्म–नीति, दर्शन–शास्त्र और शरीर विज्ञान आदि संसार की समस्त क्रियायें मानव की व्याख्याओं और विभिन्न अध्ययन के परिणामों से ओतप्रोत रही हैं। इतिहास बताता है कि समाज में उसका स्थान अनूठा रहा है और शरीर–विज्ञान तथा मानव निदान बताता है कि उसके जीवन का सुन्दर आदर्श क्या होना चाहिये।

प्रत्येक नारी अपने मन में अपने को समस्त वस्तुओं की अधिकारिणी और स्वामी मानती है; परन्तु ईश्वरीय नियमों और व्यवस्थाओं में बंधी हुई किसी

वस्तु पर भी शासन नहीं कर सकती। कभी-कभी उसकी इच्छा बड़ी तुच्छ और पतनकारी होती है; किन्तु जो नारियां उच्च भावनाओं और उद्देश्यों पर केन्द्रित आत्मा की सेवा करती हैं, वह साधारण नारी से उच्च बन कर आत्मिक शांति को प्राप्त कर लेती हैं।

जैसा की पहले बताया जा चुका है कि प्रत्येक माता का कर्तव्य अपनी पुत्री के लिये यही है कि उसकी पुत्री का शारीरिक, मानसिक और नैतिक विकास विवाह की आयु होने से पूर्व ही पूर्ण हो जाना चाहिये। इससे जीवन में आगे चलकर उसे कोई भी कष्ट नहीं होता; क्योंकि उस समय वह पूर्णतः धर्मात्मा और निर्भीक बन चुकी होती है। यही कारण है कि बुद्धिमान लोग पत्नी के चुनाव में न तो सुन्दरता देखते हैं और न ही आभूषण देखते हैं, वे उसके चरित्र, शिटष्ता और उसके कार्यो का मूल्यांकन करते हैं। उस समय न तो उसे कुछ कहना पड़ता है और न उसके अभिभावकों को ही उसकी वकालत करनी पड़ती है। अतः वर्तमान युग में जब कि नारी फैशन की तितली बन चुकी है और इस फैशन के कारण वह अपने चरित्र का भी मूल्य नहीं समझ पा रही, आवश्यकता इस बात की है कि उसका जीवन का लक्ष्य बदल कर उसे सुघड़ गृहिणी बनाया जाय; जिससे वह स्वयं गौरान्वित हो सके और अपनी सज्जनता को भी गौरान्वित कर सके। वर्तमान युग में इस गड़बड़ का कारण मानव मन की भावना के भ्रम मूलक निरूपण और अस्पष्टीकरण के कारण उत्पन्न हुआ है नारी की महत्ता और पवित्रता पर बल दिये बिना उसे सुन्दर पशुओं की कोटि में रख दिया गया है। दूसरी ओर पुरुष की निम्न गामिनी प्रवृत्तियों का मूल्यांकन किये बिना उसे देव कोटि में रख दिया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि मनुष्य को पशुत्व की खुली छूट मिल गयी और नारी पर अत्याचार करना उसने अपना नैतिक और प्रकृतिप्रदत्त अधिकार मान लिया।

भारत में ७ वीं से ११ वीं शताब्दी तक निरीह नारी पर धार्मिक ताने-बाने के आवरण में जितना अत्याचार पुरुष ने किया और अपनी मर्यादा के जितने निम्न स्तर पर उतरा उसकी मिसाल इस देश के इतिहास में और कहीं

नहीं मिलती; परन्तु निरीह नारी उस समय अत्यन्त मूक पशु की भाँती पति-सेवा में तत्पर रही। उस समय परमात्मा का डर मनुष्य के हृदय से विल्कुल निकल चुका था और वह ईश्वरीय नियमों की उपेक्षा करके उन्हें चुनौतियां देने लगा था। अतः अवस्था ऐसी आ गयी थी कि उस काल के तत्ववेत्ताओं को यह कहने के लिए विवश होना पड़ा था कि यदि संसार में ईश्वर नहीं भी है तो भी संसार की सुख शांति और मर्यादित समाज के लिए उसका अविष्कार करना ही होगा।

आज ज्ञान–विज्ञान का युग है। दिखावटी तौर पर मनुष्य धन, वैभव, कला–कौशल, उद्योग–धन्धों, विभिन्न सामाजिक संस्थाओं और कार्य–प्रणाली की दृष्टि से सुव्यवस्थित भीं है; किन्तु, प्रश्न यह है कि मनुष्य के विज्ञान प्रयोग उसके निज के लाभ के लिए क्या हो रहा है ? वह स्वयं क्या कर रहा है और क्या वन रहा है ? इस प्रश्न का उत्तर वड़ा निराशाजनक दिखाई पड़ता है। लगता यह है कि वह अपने लिये, संसार के लिए नर्क की श्रृष्टि कर रहा है। ऐसी स्थिति में नारी वर्ग की ओर ही संसार की दृष्टि जाती है। यदि पुरुष की इस फिसलन में उसके साथ वह भी फिसल जाती है, तव संसार के उद्धार का कोई उपाय नहीं। यदि वह संभली रहती है, तव आशा यह की जा सकती है कि फिसलते पुरुष समाज को भी वह संभाल लें।

इसके लिए नारी को अपने चरित्र का मूल्यांकन करना होगा। उसे चरित्र का अर्थ जानना होगा। जो नारी चरित्र का अर्थ जान लेती है, वह चरित्र का मूल्य सोने–चांदी के चन्द टुकड़ों से ही नहीं, शाही खजानों से भी अधिक महत्व-पूर्ण मानती है। वह विश्व की किसी भी वस्तु के प्रलोभन में पड़ कर उसें छोड़ने या वेचने के लिए तैयार नहीं होती और जव तक कोई नारी अपनी इस आस्था पर दृढ़ रहती है, तभी तक वह नारी भी है अन्यथा वाजार की एक निम्न से निम्नतम औरत है। जिसका समाज में कोई मान नहीं, कोई प्रतिंष्ठा नहीं। चन्द दिन के लिये चोरी छिपे चोर सदृश्य काम पिपासु उसके द्वार पर आते हैं, पश्चात् एक मरियल कुतिया की भांति उससे वच कर निकल जाते हैं। उस समय न उसका तन उसका साथ देता है, न मन साथ देता है और

आत्मा तो उसकी कभी की मर चुकी होती है। अपने चरित्र की रक्षा से एक सम्भ्रान्त नारी को कितना आनन्द प्राप्त होता है, इसका अनुमान एक प्रतिव्रता नारी ही लगा सकती है—कुल्टा नहीं।

संसार की मृग–तृष्णाओं और माया–मोह के पीछे कोई भी चरित्रवान नारी अपने चरित्र से मिलने वाले अनन्त सुख को कभी भी छोड़ने के लिए तैयार नहीं होती। जो किसी प्रलोभन में आकर पतित हो जाती हैं, वे भंयकर भूल करती हैं। उनकी आत्मा सदैव उन्हें धिक्कारा करती है। अतः नारी के लिये अपने चरित्र की रक्षा करना अपनी सब से स्थिर सम्पत्ति और स्वत्व की रक्षा करना होता है।

नारी जीवन एक पुष्प सरीखा है। जो सब के लिये सुहावना है, सब के लिए प्रतिष्ठित भी है। सब उससे स्नेह भी करते हैं; किन्तु यदि उसमें चरित्र-हीनता आती है, तो उसका सम्मान सदा के लिये समाप्त हो जाता है। स्वयं उनके माता–पिता तक उसे धिक्कारते हैं।

अन्ततोगत्वा नारी भी मनुष्य है और उसके मानव मन में कमजोरी का विचार आना भी स्वाभाविक है। किसी भी अवसर पर उसमें दुर्बलता आ सकती है; परन्तु यदि उन कमजोरियों और दुर्वलताओं को वह कठोरता से कुचल देती है और चित्त को दृढ़ रखती है तब उसकी विजय निश्चित होती है। प्रत्येक नारी को यह मानकर चलना चाहिए कि बुराइयों को गले लगाना सांप पालना है। सांप शरीर से कोमल होता है। उसका रंग भी सुहावना होता है। अतः बुराइयां भी प्रारम्भ में अच्छी और लुभावनी लगती हैं। परन्तु जिस प्रकार वह कोमल और सुहावना कीड़ा अपने विषैले दांत से प्राण हर लेता है, उसी प्रकार बुराइयां भी प्राण हर लेती हैं। किसी भी स्त्री या पुरुष का यश हर लेना और उसके शरीर की बुराइयों जनित ताप से कृश कर के सुखा देना प्राण हरण के समान ही है। अतः प्रत्येक बुराई को अपने अंतःकरण से शनैः शनैः निकालती रहो—यही वास्तविक जीवन है। चरित्र की सबलता है और मनुष्य जीवन की—नारी जीवन की सार्थकता है।

प्रत्येक नारी को सदैव यह स्मरण रखना चाहिये कि जो भी व्यक्ति अथवा जो भी सखी-सहेली अपनी वार्ता द्वारा उसके चित्त को चरित्र को कलंकित करने का अथवा उस घढ़ाने का प्रयास करता है-वह उसे वातों के द्वारा विपपान कराता है। इस संसार में कोई जीवन ऐसा नहीं है जो सव प्रकार से सुखी हो-जिस पर कभी भी कोई आपदा या कष्ट न आपा हो; परन्तु उस कष्ट को धैर्य के साथ सहन कर लेने का नाम ही जीवन है। उस समय चरित्र की रक्षा करने का नाम ही पतिव्रत-धर्म है। वह नारी का यश है-स्वरूप है। उसे कुरूप नहीं होने देना चाहिए। तभी जीवन यशस्वी वनता है; दूसरों के लिये अनुकरणीय वनता है। यह सदैव स्मरण रखना चाहिए कि कोई भी पाप चाहे कितने भी पर्दों या ओटक में किया जाय-पाप है। ईश्वर सव कुछ देखता है और उसका परिणाम भी उसे भोगना ही पड़ता है। पहले तो आत्मा ही उसे धिक्कारती है। जीवन भर कोसती है। पश्चात् परमात्मा द्वारा दण्ड दिया जाता है। यह कभी न भूलना चाहिए कि धन, स्वास्थ्य अथवा किसी भी हानि की पूर्ति विभिन्न उपायों के अवलम्वन द्वारा की जा सकती है; किन्तु चरित्र की हानि की पूर्ति करने का आविष्कार न कभी हुआ है और न होगा।

मानसिक पाप-चरित्र ह्रास का कारण

चरित्र-पतन अथवा चरित्र के ह्रास के लिये, वातावरण न आदि जाने कितने कारण हैं। उन्हीं कारणों में गन्दी वातों और विचारों का मानसिक मनन भी एक प्रवल कारण है। ऐसी वातों का जितना भी मनन किया जायेगा, वह एक दिन जरूर पनपेंगी, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार एक वीज को वो देने के वाद, एक अंकुर और एक पौधे के रूप में उसका उगना अनिवार्य है। इसीलिए हम कष्ट भी पाते हैं; क्योंकि किसी न किसी प्रकार की बुराई को हम अपने हृदय में जगह दे देते हैं। प्रकृति चाहती है, प्रत्येक मनुष्य-प्रत्येक स्त्री-पुरुष, पवित्र रहे। प्रकृति को पवित्रता पसन्द है। जो व्यक्ति इस वात की ओर ध्यान नहीं देते, अपवित्रता का जीवन भोगते हैं, वे समाज के लियें उतने ही हानि-

कारक कीटाणु जैसे होते हैं, जिनका जन्म गन्दगी से होता है और बीमारियां फैलाते हैं। भारतीय धर्म ग्रन्थों में चरित्र को अमूल्य निधि के रूप में लिया गया है। वह निधि ऐसी निधि है जिसे धन द्वारा नहीं खरीदा जा सकता। यहीं तक नहीं, संसार का सब से बड़ा साम्राज्य और महान् से महान् सम्मान भी चरित्र के सम्मुख तुच्छ है। जिसके पास चरित्र रूप धन है, उसे संसार की कोई भी शक्ति न तो झुका सकती है और न नीचे गिरा सकती है और न ही कोई सांसारिक अथवा मानवीय बाधा उसे उसके लक्ष्य से हटा सकती है। इसलिये यह अनिवार्य है कि यदि मन में चरित्र सम्बन्धी कोई दोष उत्पन्न होता है, तो उसका निराकरण तत्काल करना चाहिए। चरित्र-निर्माण की एक मात्र प्रक्रिया स्वभाव में सुधार होता है।

चरित्र निर्माण का महत्व भारत में ही नहीं, विदेशियों ने भी बहुत किया है। अपनी चरित्र-निर्माण सम्बन्धी पुस्तक में मेजर कैम्पबेल ने लिखा है– "प्रत्येक चरित्रवान मनुष्य अपने जीवन के लिये ही नहीं, दूसरों के जीवन के लिये भी ईमानदार होता है। उसके शब्दों और निष्ठाओं पर पूर्णरूपेण विश्वास किया जा सकता है। वह कभी भी विश्वासघाती सिद्ध होता नहीं देखा गया। वह एक ऐसा जीव होता है जो आवश्यकता से अधिक अपने को चतुर सिद्ध करने का प्रयास नहीं करता।"

उसकी दूसरी विशेषता यह है कि वह दूसरों की सफलता अथवा गुणों को तुच्छ बताकर उनकी भी मीमांसा कर के अपना कोई महत्व स्थापित करने का प्रयत्न कभी नहीं करता। वह धीर गम्भीर और सहनशील प्राणी होता है। वह दूसरों की बातें ध्यान से सुनता है, भले ही वह उनके मत से सहमत हो अथवा असहमत हो। वह दूसरों की भूलों की नुक्ताचीनी तो नहीं करता; किन्तु अपनी भूल को स्वीकार करने में उसे कोई हिचक नहीं होती।

उसके चरित्र की विशेषता यही है कि वह दूसरों को उचित परामर्श और कष्टों में उनके प्रति सहानुभूति व्यक्त करने के लिये तैयार रहता है। ऐसा व्यक्ति जो दूसरों के गुणों को ग्रहण करने के लिये सदा तत्पर रहे, प्रत्येक उस

पीड़ित व्यक्ति का सच्चा सहायक होता है, जिस पर घोर विपत्ति आई होती है। अतः प्रत्येक प्रकार की परिस्थितियों में उस पर विश्वास किया जा सकता है।

उसकी वाणी मधुर और कोमल होती है, भले ही वह कोई धनिक हो अथवा उच्चाधिकारी; क्योंकि वह विचारशील होता है। अतः कठोर या अनर्गल शब्दों को मुंह से नहीं निकलता।

इसके विपरीत विलासिता है। विलासिता से पतन का प्रारम्भ होता है। आंखें मन कठोर और काला होता है। उसकी प्रत्यक्षतः बाह्य रूप की उपासिका बन जाती हैं और आन्तरिक दृष्टि धूमिल पड़ जाती है। अतः ऐसे विलासी व्यक्ति को प्रसन्न करना तो कठिन होता है। किन्तु उसे तंग आसानी से किया जा सकता है। ऐसा व्यक्ति संकटकाल आने पर किंकृत्यविमूढ़ बन जाता है। उसकी दशा ठीक उस तितली सदृश्श होती है जो प्रभात के ओस कणों पर तो सन्तुष्ट होती है; किन्तु जब तेज धूप पड़ती हैं, तब उसके लिए कोई व्यवस्था नहीं करती। अतः छोटे बच्चों के लिए विलासिता से बचाना जहां माता–पिता का कार्य है, वहां युवकों के लिये बचाना माता–पिता के साथ-साथ सरकार का भी कार्य है, जिसके लिये सदाचार सम्बन्धी शिक्षा–काल में विभिन्न नियम अपनाये जा सकते हैं।

नवयुवको में या नवयुवतियों में फैशनपरस्ती, अकमर्णयता, सौन्दर्य प्रियता और नशाखोरी तथा उच्छृंखलता और अनुसासन–हीनता देश और समाज के लिए यहां भंयकर रोग है। इन्हीं के कारण समाज और देश बहुत से योग्य और प्रतिभाशाली व्यक्तियों से वंचित रह जाता है; क्योंकि उनमें अपने विकास के तत्व तो होते हैं; किन्तु विलासी जीवन के कारण वे नष्ट हो जाते हैं। अतः मनुष्य की प्रवृत्ति विलासिता से हटकर सात्विकता की ओर जितनी प्रेरित होती है, उतनी ही उसमें निर्दोषिता आती है।

आज के युग में विश्व भर में भोगवाद और विलासिता का दौर तेजी से

चल रहा है। इसलिये पश्चिमी जगत ने तो अपनी संस्कृति को भी भोग प्रधान बना लिया है उसका पोषण स्वार्थपरता तथा सांसारिक कुचेष्टाओं के रूप में हो रहा है। इस संस्कृति का केन्द्र विन्दु वर्तमान भौतिक विज्ञान बना हुआ है। अत: इस अमर्यादित संस्कृति को खुले भोगवाद ने विनाश के कगार पर लाकर खड़ा कर दिया है। इसका परिणाम आज भय के रूप के सब राष्ट्रों के सम्मुख उपस्थित हैं। जिन बुराइयों को भौतिक साधनों से सुलझाने का प्रयत्न किया जाता है, यह उतनी ही जटिलता बन जाती हैं। वह यह नहीं समझ पाते कि विलासिता एक ऐसा रोग जो बलवान से बलवान को भी धराशायी कर देता है। बड़े-बड़े परिवार या व्यक्ति ही नहीं, बड़े-बड़े साम्राज्य तक इसकी अग्नि में जलकर राख हो चुके हैं।

वस्तुत: अमर्यादित भोगवाद का जन्मदाता यूरोपियन देशों का औद्योगिक विकास है। यूरोप के उद्योगपतियो ने विलासिता के माल को अपने व्यापार को लक्ष्य-बनाकर संसार के बाजारों को पाट दिया था। इन बाजारों की प्राप्ति के लिये राजनीतिक संघर्ष और युद्ध किये गये। बड़े-बड़े देशों को शक्ति और छल द्वारा गुलाम बनाया गया और इसके बाद उन्हें सभ्य बनाने की आड़ में उनके उदर में विलासिता का जहर डाला गया।

यदि विलासिता के पतनकारी उत्पादन और भोगवाद की संस्कृति के रक्षण के लिए लड़े जाने वाले युद्धों पर व्यय होने वाला धन तथा श्रम जनता के बौद्धिक, नैतिक तथा आर्थिक सुधार पर व्यय हो तो संसार में अशान्ति रहने का कोई कारण ही नहीं रह जाता। इसके अतिरिक्त उस अपार धन के व्यय के कारण जब राष्ट्रों की आर्थिक स्थिति निर्बल हो जाती है तब वे अनैतिक कार्यों द्वारा देश की आर्थिक स्थिति को सुधारने का प्रयत्न करते हैं। उदाहरण के लिए ऐसे देश अपने यहां पर्यटकों को आकर्षित करने के लिए नाइट क्लब, रेस, निधि जुआ घर तथा तस्कर व्यापार को बढ़ावा देते हैं।

इस स्थिति में देश में चरित्र नाम की तो कोई वस्तु रह ही नहीं पाती। महिलायें केवल विलास का साधन रह जाती हैं। केवल अपने देश वासियों के

लिये ही नहीं अपितु प्रत्येक उस पर्यटक के लिए भी जो उनके देश में अपनी दौलत लूटने आया है। ब्रिटेन, फ्राँस. जर्मनी और सोवियत रूस आज विज्ञान की दृष्टि से भले ही कितने भी ऊंचे शिखर पर हों, लेकिन उन देशों की सामाजिक स्थिति क्या है और उसमें भी महिलाओं की स्थिति क्या है, यह प्रत्येक वह व्यक्ति जानता है, जिसने उन देशों की सैर की है। वहां पर नारी लज्जा नाम की भी कोई वस्तु उन नारियों के जीवन में शेष नहीं रह गई है। पतिव्रत धर्म की तो बात ही उनकी कल्पना से परे हैं।

मैंने अपने पति के साथ जब विदेश यात्रा की तो उस यात्रा में मेरा अपना एक दृष्टिकोण था, एक रुचि थी और एक जिज्ञासा थी और वह जिज्ञासा यह थी कि मैं प्रत्यक्ष रूप से यह देखना चाहती थी कि आज के सभ्य भू-भाग—यूरोप में नारी की स्थिति क्या है ? उसका परिवारीय जीवन कैसा है और गृहस्थी के जीवन को उसने किस रूप में, किस शैली में और कैसी व्यवस्था में अपनाया हुआ है। इसके अतिरिक्त उसका दाम्पत्य जीवन कैसा सुखी है ? उसमें कटुता यदि है तो किस ओर से है और यदि मधुरता है तो उस मधुरता की प्राप्ति के लिए उसने अपने जीवन को किस प्रकार ढला हुआ है अथवा कौन से उन उपायों का अवलम्बन किया है जिन्हें पति अपने लिए सुखकारक समझता है, विश्वसनीय समझता है और मानव-जीवन के सुख का केन्द्र समझता है।

मेरी दृष्टि केवल यूरोप की नारी पर केन्द्रित हुई, यह मुझे पता नहीं कि मेरे पति की दृष्टि भी अपने पुरुष साथियों के आचरण पर हुई या नहीं। यह वह जानें कि उनका घूमने का दृष्टिकोण व्यापारिक मात्र था, दर्शनीय था अथवा मन बहलाव के लिए था या वह भी यूरोप के महान वैज्ञानिक, महान् विलासी और महान् परिश्रमी पुरुष का कुछ विश्लेषण करना चाहते थे। इस बारे में मैंने जानने का प्रयत्न भी नहीं किया; क्योंकि मुझे तो अपने वर्ग की जानकारी की ही धुन थी। अत: वहाँ जो देखा, उसे देखकर मेरी तो आत्मा ही कांप गई। भारत में तो फैशन की मारी बेचारियों को अर्द्धनग्न ही देखा है, लेकिन वहाँ तो यह सीमा अतिक्रमण को भी पार कर गई है। यह हाल

सब जगह है। यूरोप की नारी पूरे अर्थों में आजाद है। उसकी यह आजादी और किसी बात में हो या न हो; लेकिन जहां तक फैशन और विलासिता का सम्बन्ध है, उसमें तो वह पूरी तरह आजाद है। रही वहां के क्लबों की बात– भगवान बचाये ऐसी बातों से, ऐसे दृश्यों से। उसका तो कुछ वर्णन करना ही बेकार है। केवल यह समझ लीजिये कि ९० प्रतिशत महिलायें चालीस साल के बाद ही किसी एक के पल्ले बंधना पसन्द करती हैं, इससे पहले वह स्वयं वरा हैं। हर सप्ताह, हर महीने, हर वर्ष, पाँच वर्ष और कभी-कभी तो दिन में दो बार तक स्वयंवर कर डालती हैं। इसका एक कारण जहाँ पुरुष है, जिन्होंने उन्हें शिक्षित नहीं किया, उनके चरित्र में धार्मिक भावनायें नहीं भरीं, उन्हें महान विदुषी महिला नहीं बनाया अथवा पतिव्रत धर्म का महत्व नहीं सिखाया और अपनी विलासिता के चाव के लिए उन्हें स्वतन्त्र घोषित किया, वहां दूसरा कारण वहां दो विश्व युद्ध हैं जिनमें रूस के ३ करोड़, जर्मनी के २। करोड़, फ्रॉस के २ करोड़ और ब्रिटेन के १।। करोड़ नौजवान मारे गये और महिलाओं की संख्या बढ़ गई।

उसके पश्चात् जो होना था वही हुआ। मानव मनन के अध्ययन से यह सिद्ध है कि प्रखर बुद्धि वाले व्यक्ति धर्म का अवलम्बन किये बिना भी उन्नति तो कर सकते हैं जैसे आज सोवियत रूस कर रहा है, परन्तु वह उन्नति न तो स्थिर होती है और न शांति दायिनी होती है। अतः आज उनके भौतिक विज्ञान के विकास को देखकर वाह-वाह !! शब्द की ध्वनि तो हमारे मुख से निकलती है, परन्तु उसकी यह भौतिक उन्नति विश्व शाँति में सहायक बनने के स्थान पर उल्टे घातक बन गई है। इसलिये कि वह उन्नति साधन बनने के स्थान पर साध्य बन गई। अतः उसका लक्ष्य स्वार्थ सिद्धि और शक्ति संचय बनकर मानवता के विशाल कल्याण से हटकर एकतन्त्रवाद अथवा स्वार्थवाद बन गया। यदि बाह्य ब्रह्मॉड का भेद खोलने वाला आज का मानव प्रकृति के अनन्त रहस्यों को खोलने का उपक्रम करने के साथ-साथ अपने आपको भी जानने का कभी प्रयत्न करता तो मनुष्य समाज का अधिक कल्याण हो सकता था और विज्ञान महान देन मानवता के लिए होती, लेकिन हुआ इसके

विपरीत, मनुष्य अपने आपको भूल गया। अपने समाज को भूल गया और अपनी नारी को भी भूल गया।

आज का वैज्ञानिक अपने राष्ट्र की सेवा का सन्तोप संघारक शस्त्रा-शस्त्र बनाकर भले ही कर ले, परन्तु वह यह नहीं जानता कि विश्व की मानवता को अपने साथ ही खड में डालने की तैयारी कर रहा है। यह दशा केवल रूस की ही हो, ऐसी बात नहीं, कई देशों में यही अवस्था है। यदि तीसरा युद्ध छिड़ता है तो मानवता का क्या हाल होगा ? यह केवल ईश्वर ही जानता है। संसार की आबादी यदि एक चौथाई भी रह जाय तब भी बहुत है। इसलिए आज आवश्यकता तो इस बात की है कि वैज्ञानिकों को या राष्ट्र नायकों को इस पैशाचिक भूख को – पैशाचिक प्रवृत्ति को रोका जाय और उसे केवल महिलाएं ही रोक सकती हैं और संसार को विनाश से बचा सकती हैं। इसके लिये उन्हें प्रबल आन्दोलनों, प्रबल महिला संगठनों का निर्माण तो करना ही होगा, घोर परिश्रम और त्याग भी करना पड़ेगा। उन्हें वैज्ञानिकों को समझाना होगा कि वे अपनी बुद्धि का प्रयोग न तो प्रसाधन सामग्री के निर्माण में करें और न विनाशकारी अस्त्र-शस्त्रों की खोजों में; क्योंकि जब मानव बुराई को भलाई समझकर उसका प्रयोग करता है तो स्थिति बड़ी भयंकर बन जाती है और इसीलिए स्थिति भयंकर बन भी चुकी है।

आवश्यकता इस बात की भी है कि वैज्ञानिकों को समझाने से पहले यह बात महिला वर्ग को भली भांति समझ लेनी चाहिए कि धर्म और शुभ कार्य में प्रेरित होने पर ही बुद्धि का प्रकाश बढ़ता है और संसार में सत्य और कल्याण का जो थोड़ा बहुत अंश दीख पड़ता है, वह सब कर्म और कर्तव्य मार्ग से प्रेरित बुद्धि का ही चमत्कार है। अतः सिद्ध यह हुआ कि बुद्धि को बुरे काम में लगाने से और उस काम को बार-बार करने से मनुष्य पाप पथ पर अग्रसर होता है और अच्छे कार्य में लगाने से यश का संचय करता है।

महिलाओं में सबसे बड़ी त्रुटि यह है कि अधिकांश में वे अपने भाग्य से कभी सन्तुष्ट नहीं होतीं और कभी-कभी अपनी समझ से भी कभी सन्तुष्ट नहीं

होतीं । इस त्रुटि का निवारण वे तभी कर सकती हैं जब अपनी भावनाओं पर कर्तव्य को विजय दिलायें और ईश्वर पर पूर्ण रूपेण विश्वास करें और यह तभी सम्भव है जब उनके संस्कार परिष्कृत हों । सत् परमार्श उत्तम साहित्य तथा सत्पुरुषों से प्राप्त हो सकता है । सत्पुरुषों में यह आवश्यक नहीं कि कोई बाहरी व्यक्ति ही हो, स्वयं पति भी हो सकता है ।

उसके पश्चात् ही नारी जीवन की स्थिति यह बनती है कि वह यह समझने लगती है कि मैं क्या हूं ? अपने हृदय को टटोलने के बाद ही उसे यह ज्ञान होता है कि मुझे क्या करना चाहिए । तब वह ऐसे कर्म करना प्रारम्भ करती है कि संसार में सर ऊंचा करके चल सके । इसके लिए उपयुक्त यह रहता है कि प्रत्येक महिला सोते समय अपने दिन भर के कार्यों पर दृष्टि डाले, यदि उससे कोई कार्य बुरा हो गया है तो उसके लिये पश्चाताप करे और आगे उस कार्य को न करने की प्रतिज्ञा करे । अपने जीवन को सुधारने का यह सर्वोत्तम उपाय है । इसे ही आत्म-निरीक्षण कह सकते है ।

इसके अतिरिक्त यह भी ध्यान रखने की बात है कि अपना सुधार करने वाली अथवा अपने सुधार की इच्छा रखने वाली किसी भी नारी को अपने ऊपर अत्यधिक विश्वास नहीं करना चाहिए; क्योंकि जीवन में किसी गुण को धारण करना तो अच्छा है, अभिमान करना अच्छा नहीं रहता । उसमें गुण के अवगुण मे बदलने की आशका भी रहती है, क्योंकि ज्ञान प्राप्त करने का अर्थ अपने को सच्चा बनाना है और इसमें यदि चूक होती है तो वह चूक दूसरो के लिये भी हो सकती है । चाहिये यह कि प्रत्येक नारी दूसरों की त्रुटियों को अपने लिए अपना बनाये, उनसे अपने को ऊंचा उठाये । अपनी विचारधारा को बदल दे । विचारधारा को बदलने के लिए अपनी आत्मा और आत्मविश्वास का प्रबल होना अति आवश्यक है; क्योंकि नारी-चरित्र भी एक बिजली के करण्ट की भांति होता है । बिजली के उस करण्ट का प्रयोग शक्ति के रूप में मानव-जीवन के लाभ के लिए तो किया ही जाता है, किन्तु अनुभव-हीन अथवा लापरवाह लोग उससे प्राण हानि भी कर बैठते है ।

इस सत्य को पुरुषों को भी स्वीकार करना चाहिए कि नारी जीवन एक विजली का करण्ट है जो हृदय के तारों को स्पन्दन प्रदान करता है। पारिवारिक और शारीरिक सुख शांति का आधार है। जिसके कारण मनुष्य का जीवन आलोकित होता है। उसका हृदय प्रकाश पाता है। उसका मस्तिष्क शांति प्राप्त करता हैं और कान मधुर शब्दों का श्रवण करते हैं। इसी सुख का आधार होते हुए भी जो व्यक्ति इसका दुरुपयोग करने की भूल करते हैं, वे अपने जीवन को सबसे बड़ा धोखा देते हैं। वह स्वयं ही कष्ट पाते हों, केवल इतनी वात नहीं, अपितु वह पता नहीं अपनी कष्ट अग्नि में कितनों को झुलसा डालते हैं। कभी-कभी वात झुलसने तक ही सीमित नहीं रहती, अपितु स्थिति भस्म होने तक की आ जाती है। यह सब कुछ चरित्र के ऊपर निर्भर है। इनमें से जिसमें भी कमी होती है, वहीं मन के अन्दर किसी भी बुराई के पनपने का अन्देशा रहता है और एक बुराई का पनपना अनेकों बुराइयों का जन्मदाता वन जाता है।



नारी हृदय की महानता

यह बात प्रायः सभी मानते हैं कि नारी हृदय अत्यन्त विशाल होता है। वह कठोर कम होता है, कोमल अधिक होता है। कठोर इतना होता है कि कभी-कभी इतना साहसपूर्ण कार्य नारी कर बैठती है कि व्यक्ति को चकित हो जाना पड़ता है और कोमल इतना होता है कि जरा-सी ठेस से, जरा से आघात से वह शीशे की भांति टूट भी जाता है। इतने पर भी एक कठोर से कठोर हृदय रखने वाली नारी के हृदय के अन्दर ममता और दया की भावना निहित होती है। उसका हृदय किसी को दुखी देखना और उसके दुख को अपना आल्हाद बनाना पसन्द नहीं करता। बरबस किसी को दुखी देखकर उसके हृदय में ममता उमड़ पड़ती है। यह बात कठोर हृदयी पुरुष में नहीं पाई जाती। इसी का कारण यह है कि पुरुष अत्याचारी बन जाता है—कठोर अत्याचारी। और कभी-कभी उसका अत्याचार सीमा का अतिक्रमण तक कर बैठता है।

अपने जीवन में तो वह पता नहीं कितने विभीत्स कार्य वह करता ही है, अपनी सरल हृदया नारी तक के विश्वास तक को ठेस पहुंचाते भी उसे लज्जा का अनुभव नहीं होता। कभी-कभी तो यहां तक देखा गया है कि वह अपनी पत्नी को पीड़ित करके उसकी पीड़ा में भी आनन्द का अनुभव करता है। उसके नेत्रों से निकले विवशता और करुणा के आंसू उस कठोर पुरुष के मार्ग को अवरुद्ध नहीं कर पाते। वह नारी हृदय की महानता का मूल्यांकन नहीं कर पाता। इसलिये कि या तो वह हृदयहीन होता है अथवा उसके हृदय से कोमलता समाप्त हो चुकी होती है। इसके साथ-साथ यह बात भी सत्य है कि

पुरुष का हृदय अत्यन्त परिवर्तनशील भी होता है, वह नारी हृदय की भांति दृढ़ नहीं होता। पुरुष हृदय को तो आसानी से वदला जा सकता है; किन्तु उसके लिए अनिवार्यता यह है कि स्वयं उस नारी का हृदय दृढ़ हो, स्वच्छ हो और ममता भरा हो। ऐसा न हो कि वह अपने पुरुष की भांति अपने हृदय की ममता को भी तिलांजली दे दे। यदि ऐसा किया जाता है तो प्रतिशोध की अग्नि हृदय में सुलगनी शुरू हो जाती है और वह अग्नि एक दिन विशाल लपटों का रूप लेकर समस्त घर को—समस्त परिवार को अपने में लील लेती है।

नारी हृदय कोमल और ममता भरा तो होता है, परन्तु यह देन प्रकृति-प्रदत्त होती है। प्रकृति की उस देन को स्थिर कैसे रखा जाय, इसके लिए प्रयत्नशील रहना अत्यन्त आवश्यक है, इसीलिए हमें हृदय की और हृदय की विशालता की मीमांसा करने के लिये विवश होना पड़ता है।

जिस प्रकार सोने के तपने पर ही उसके खरे और खोटे होने का पता लगता है, उसी प्रकार की स्थिति हृदय की है। उसकी विशालता और दृढ़ता का पता भी तभी चलता है जब वह त्याग, तप और कष्टों के झंझावातों से गुजरता है। उस समय जिनका हृदय डोल गया, डोल गया और जिनका हृदय अचल रहा, वह संसार के थपेड़ों से भी हानि नहीं उठा पाते।

प्रकृति प्रदत्त हृदय अत्यन्त पवित्र और प्रकाशमान होता है। प्रकृति का आशय ऐसे हृदय से यही है कि उसके प्रकाश में मानव अपने जीवन पथ पर निर्बाध गति से अग्रसर स्वयं ही होता चला जाय और दूसरों का पथ भी प्रशस्त करे। जिन पुरुषों अथवा महिलाओं का हृदय इतना प्रकाशमान होता है, उन्हें अन्धकार में छुपी हुई अनेक बाधाएं तक स्पष्ट दीखने लगती हैं तथा आने वाली घटनाओं का आभास उनका हृदय पहले ही उन्हें दे देता है।

निर्मल हृदय की पहचान चेहरे की मुस्कराहट से भी जानी जा सकती है। यदि कोई नारी कुटिलता में पारंगत न हो तो उसका आनन उसके हृदय की विशालता का परिचय स्वयं ही दे देता है; क्योंकि वह आभा उसके हृदय के तारों का स्पन्दन है—प्रकाशमान तारों का। जिस प्रकार किसी योग्य उम्मीद-

वार को किसी सिफारिशी-पत्र की आवश्यकता नहीं होती, उसी प्रकार विशाल हृदय सरल नारी को भी किसी विश्वास के प्रमाण-पत्र की आवश्यकता नहीं होती। ऐसे निर्मल और महान हृदय वाली नारियों की देश में कमी अवश्य है, परन्तु यदा-कदा, यत्र-तत्र परमात्मा ने उनको अपनी विशेष अनुकम्पा से इस धरातल पर भेजा हुआ है और उन्हें इतना विशाल हृदयी भी बनाया है कि जिन्होंने न केवल अपने जीवन से अपने जीवन साथी को ही सुखी जीवन प्रदान नहीं किया, अपितु देश की न जाने कितनी नारियों को जो साहसहीन हो चुकी थीं, नया जीवन अपने विचारों द्वारा उनकी विचारधारा को बदलकर प्रदान किया है।

कलकत्ता की जिस बहन का वर्णन मैं ऊपर कई बार कर चुकी हूं, वह उन महिलाओं में से एक कर्मठ महिला हैं, जिनका जीवन का अधिकांश भाग और धन का भी—ऐसी महिलाओं के चरित्र-विकास में व्यय होता है जो मानसिक अथवा शारीरिक रूप से पीड़ित हैं, यह कल्पना आज के युग में असम्भव सी लगती है, किन्तु है सत्य। उस सत्य से इंकार नहीं किया जा सकता।

जहां तक हृदय की विशालता का सम्बन्ध है वहां यह भी अनिवार्य है कि बुद्धि भी निर्मल होनी चाहिए, क्योंकि हृदय और बुद्धि का परस्पर सामंजस्य है। यदि किसी नारी या पुरुष का हृदय और बुद्धि ठीक न हो तो हृदय की विशालता का भी कोई लाभ नहीं होता। कभी-कभी वह विशालता व्यर्थता और निर्बलता में बदल कर हानि करा देती है क्योंकि उस समय हृदय मार्ग-दर्शक नहीं रह पाता अथवा सही मार्ग-दर्शन नहीं कर पाता। उस समय हृदय की अनुपूर्ति न व्यावहारिक रह पाती है और न वास्तविक।

जब हृदय की स्थिति ऐसी हो जायेगी, तब हृदय अपने गुण-प्रबल-प्रेरणाओं से हट जायेगा और निरीहिता में बदल जायेगा। निरीहिता नारी–जीवन का वरदान नहीं, अपितु अभिशाप ही है।

ऐसी स्थिती आने पर कभी–कभी हृदय की स्थिति परिवर्तित भी हो जाती है अथवा महान दयालुता के कारण पतित हो जाती है। उस अवस्था

में हृदय की पतिता को सम्भालना अत्यन्त कठिन हो जाता है। यह सिद्धान्त स्त्री और पुरुष—दोनों पर लागू होता है। इसका कारण वस्तुतः झूठा व्यामोह होता है। बहुत सी घटनाएं हम जीवन में ऐसी देखते हैं कि किसी दूसरे कुटिल व्यक्ति के व्यामोह दिखाने पर नारी हृदय परिवर्तित हो गया या पुरुष हृदय बदल गया।

यह सत्य है कि व्यामोह का पर्दा उठने पर और उसकी वास्तविकता स्पष्ट होने पर हृदय अपनी भूल के लिये छटपटाता है, परेशान होता है और प्रायश्चित भी करता है; परन्तु तब तक जीवन की बहुत हानि हो चुकी होती है। उदाहरण के लिए एक सम्पन्न परिवार की कुल वधु को लीजिए जिसने अपने सरल हृदयी पति को न पहचाना हो और केवल मात्र शरीर की सुन्दरता का ही वह मूल्यांकन करती हो और यह समझती हो कि उसका पति उसके योग्य नहीं है, दूसरा सुन्दर कोई भी व्यक्ति उसके योग्य होना चाहिये था।

वह मूर्ख यह नहीं सोचतीं कि जिस व्यक्ति के साथ उसका बन्धन हुआ है, वह उसके लिए दुलर्भ वस्तु की भांती है। वह उसके रूप को नहीं हृदय को देखे। उस हृदय में अपना प्रतिबिम्ब देखे। यह न देखकर वह दूसरी तरफ देखती है। दूसरी गलत धारणायें बना लेती है और कभी—कभी ऐसी महिलाओं की मूर्खता सीमा पार कर जाती हैं। वह अपने पति को ही त्यागने की मूर्खता कर बैठती हैं।

ऐसी स्त्रियां यह नहीं सोचती कि उन्होने जो धारणा बनाई हुई है वह अतिरंजित है—निन्दनीय है। इसलिये भी कि संसार में ही नहीं, देश में उससे भी सुन्दरी न जाने कितनी हैं और अपनी सुन्दरता को जिस लम्पट के चरणों पर वह निछावर करने जा रही है, इसकी क्या गांरटी है कि वह उसी सुन्दरता पर अपने को स्थिर रखेगा। यदि उससे चढ़ा हुआ दूसरा सौन्दर्य उसे सुलभ होता है, तब वह उसकी क्या दशा करेगा ? प्रायः यही नाटक हम रोज समाचार-पत्रों में पढ़ते हैं— दोनों ही प्रकार के। ऐसी लड़कियों को वास्तव में बाल्यापन में उचित शिक्षा नहीं मिलती। इसीलिये इनका मस्तिष्क सदैव

आन्दोलित रहता है और मानसिक व्यभिचार सदैव इन पर हावी रहता है। वही मानसिक व्यभिचार जब परिपक्वता की स्थिति में आ जाता है, तब यह पति के त्याग पर उतारू हो जाती हैं। उस समय न वे अपनी स्थिति देखती हैं, न पति की स्थिति का अवलोकन करती हैं। न परिवार की प्रतिष्ठा का ध्यान करती हैं। स्वयं तो डूबती ही हैं—परिवार पर भी कलंक लगाने का कारण बनती हैं। यह केवल मानसिक व्यभिचार के कारण होता; क्योंकि उनमें धार्मिकता का अभाव होता है। नारी-जीवन क्या है, इसका उन्हें कभी आभास नहीं कराया जाता। परिणामत: वह शरीर को केवल मनोरंजन, विनोद अथवा भोग का साधन मात्र मान बैठती हैं। उममें और वेश्याओं में कोई विशेष अन्तर नहीं रहता। कभी-कभी तो वह बाद में ठोकर खाने के बाद सीधे रूपा-जीवा का कार्य भी विवश होकर स्वीकार कर लेती हैं। अत: जो भी नारी केवल सौन्दर्य के कारण अपने पति को पसन्द नहीं करती, समझ लीजिये, उसके लक्षण अच्छे नहीं हैं। उसका मन मानसिक व्यभिचार से ग्रस्त है और वह कोई भी ऐसा कदम कभी भी उठा सकती है जो पति, उसके परिवार और स्वयं उसके लिये भी हानिकारक हो।

किसी भी नारी का ऐसा कदम उठाना, पुरुष के ऐसे कदम की अपेक्षा अत्यन्त बुरा सिद्ध होता है। इसीलिए प्रत्येक परिवार का यह कर्तव्य हो जाता है कि ऐसी आधुनिक चंचला पुत्र-वधु के घर में आते ही उसके प्रत्येक कार्य कलाप पर दृष्टि रखे। खाली समय के लिये उसके लिये अच्छी-अच्छी पुस्तकों की व्यवस्था करे। अपने विश्वासनुसार ईश्वर के जिस भी निराकार या साकार रूप की पूजा वह करती हो, वह उसके लिये अनिवार्य होनी चाहिये।

बुद्धि की निर्मलता और हृदय की विशालता का यह अति उत्तम उपाय है। इसी से संस्कारों का परिमार्जन भी होता है और मन भटकता नहीं है। परन्तु खेद की बात यह है कि होता इसके विपरीत है। उत्तम पुस्तकें अथवा अन्य तीर्थ-स्थलों के दर्शन कराने के बजाय उन्हें सिनेमा दिखाये जाते हैं। समय के काटने या मनोरंजन के नाम पर आधुनिक चित्र दिखाना उनके लिये

कितना हानिकारक होता है, इसका अनुमान वे नहीं लगा पाते। वे यह नहीं सोचते कि स्त्री–पुरुषों के मेकअप किये चेहरे, जिन पर बिजली की रोशनी डालकर उन्हें चमकाया जाता है तथा जिनके कामुक डायलाग सीधे हृदय पर चोट करते हैं—उनकी नव वधु के लिये कितने उपयोगी सिद्ध हो रहे हैं। उसी समय से किसी भी नवयुवती का चरित्र शिथिल होना शुरू होता है। उसके हृदय में शनैः शनैः उसके पति का चित्र धुंधला पड़ना शुरू हो जाता है और उसके स्थान पर उस सिने अभिनेता का उभरना शुरू हो जाता है। यही मानसिक व्यभिचार है। जब वह अपने एकांत के क्षणों में अपने को एक कुलवधु के रूप में न सोच कर, मन ही मन अपनी कल्पना में अपने को एक सिने तारिका समझने लगती है। वह कल्पना करती है कि वह उस सिनेमा वाली जैसी नायिका क्यों न हुई और उसका प्रेमी वह सिनेमा जैसा कलाकार क्यों नहीं हुआ ? होना चाहिये था—होना चाहिये ही, वह ही उस सिनेमा वाली से रूप में कौन सी कम है।

एक बार मनोरंजन के नाम पर उसे सिनेमा दिखाया, उसके बाद, वह एक शौक के रूप में बदला और जितने भी खेल देखे, उनके डायलॉग और उनमें आये स्त्री–पुरुषों के चेहरे उसके हृदय पटल पर अंकित हो गये–मानसिक व्यभिचार का क्रम और तेज हुआ।

मेरा यह अभिप्राय: यही नहीं है कि महिलाओं को या लड़कियों को कतई दिखाना ही नहीं चाहिये। अपितु आशय यही है कि अच्छा चित्र उन्हें दिखाया जाय, वह चित्र या तो धार्मिक हो या शिक्षाप्रद हो; क्योंकि बच्चों और महिलाओं—दोनों का हृदय अत्यन्त कोमल होता है, उस पर किसी भी चित्र या चरित्र की छाप जल्दी पड़ती है और उसका अनुकरण करने की प्रवृति कालान्तर में उभरकर उन्हें पतन की ओर धकेलती चली जाती है। इसका यदि परिणाम देखना हो तो ऐसे युवक और युवतियों को बम्बई, कलकत्ता के फिल्म स्टूडियो के भारी संख्या में चक्कर लगाते और अपना यौवन, तनधन बर्बाद करते देखा जा सकता है।

मन की निर्मलता आत्मा पर ठीक उसी प्रकार आधारित है, जिस प्रकार चन्द्रमा की चांदनी सूर्य की चमक पर आधारित है। यदि सूर्य में चमक न हो तो चन्द्रमा से चांदनी का प्रकाश असंभव है। मन स्वत: एक ऊसर भूमि है। ऐसी ऊसर भूमि जिसमें कुछ नहीं होता। उत्तम शिक्षण तथा उत्तम संस्कारों द्वारा ही मन को परिस्कृत किया जाता है। अत: मन के परिस्कृत न होने पर वह अन्धविश्वासों, दुर्भावनाओं और अशुद्ध आचरणों का अखाड़ा बन जाता है।

ज्ञान से बुद्धि विकसित होती है, तप और प्रार्थना से आत्मा पवित्र होती है, सत्य से मन दृढ़ होता है और जल से शरीर के शुद्धि हो जाने के पश्चात मन में भी स्वयं ही निर्मलता आती है और हृदय में निर्भयता का संचार होता है और इसे ही महापुरूषों ने आत्मिक–शक्ति की संज्ञा दी है जो अतीत में आपत्तियों प्रलोभनों और विकारों की आंधी से सदैव रक्षा करती है।

उस समय मन की अवस्था उच्च होती है, बुद्धि स्वतन्त्रता पूर्वक कार्य करती है और प्रत्येक नारी आसक्तियों में निर्लेप, आपतियों में अडिग, अशांत काल में शांत, भय और प्रलोभनों के समय में भी प्रसन्न रहती है; क्योंकि उस समय उसकी दृष्टि में वास्तविक सुख और शांति मन की एकाग्रता में निहित होती है। उस समय मानसिक व्यभिचार का क्षेत्र नहीं रहता। उसमें जो भाव पैदा होता है अथवा भावनाओं का उदय होता है, वे जीवन को सत्कार्य की ओर प्रेरित करने वाले होते हैं। उन्हीं के कारण यश अर्जित होता है और वह यश संसार के कल्याण का कारण भी बनता है। मन को इतना सबल बनाने के लिये ही भारतीय मनुष्यों ने बार–बार यह सुझाव दिया है कि व्यक्ति को विशेष कर महिलाओं को कभी निठल्ला नहीं बैठना चाहिये।

उनकी मान्यता है कि मन का खाली रहना ही सारी बुराइयों का कारण है। खाली मन पर विचारों और दुर्भावनाओं का आक्रमण सरलता से होता है। अत: मन को बुरे विचारों से बचाये रखने का सरल उपाय यही है कि मनुष्य को कोई न कोई कार्य करते रहना चाहिये। परन्तु वह कार्य इतना

श्रमशील भी न हो कि उससे शरीर भी क्षीण हो जाय। जिनका मस्तिष्क क्रियाशील होता है और जो चंचला स्वभाव की होती हैं उन्हें तो इस सम्वन्ध में विशेष ध्यान रखना चाहिये। मन को विश्राम देने और ताजा करने के लिये निर्दोष मनोरंजन, सरल या हास्यप्रद साहित्य जैसा कोई भी साधन अपना लेना चाहिये।

रही एकान्त अथवा जन-सम्पर्क की बात, जहां तक ध्यान अर्थात् आत्मचिंतन और ईश्वर चिन्तन का समय है—वह एकांत ही भला होता है। अत्यधिक मानवी सम्पर्क से अपने निज के बहुत से अच्छे तत्व भी नष्ट हो जाते हैं और शोर शराबे के कारण उत्तम गुणों का ह्रास ही होता है। यह मानकर चलना चाहिये कि संसार पर शासन भी विचारों द्वारा ही होता है। अतः विचारों की श्रेष्ठता और परिपक्वता के लिये निरन्तर मनन और अध्ययन की आवश्यकता है। जिन महिलाओं के चरित्र का अपने पति, परिवार और दूसरी नारियों के चरित्र पर चमत्कारी प्रभाव पड़ता है। उनका मन अत्यन्त पवित्र, हृदय अत्यन्त विशाल होता है। अतः महिला समाज का हित भी इसी में है कि देश में– संसार में उच्च विचार की महिलओं का प्रादुर्भाव हो, जिनके मस्तिष्क निर्मल, बुद्धि निर्मल और हृदय विशाल हों।

किसी भी नारी के इन गुणों को ग्रहण करने के लिये आत्मसुधार आवश्यक है। यदि किसी नारी के हृदय में यह भावना घर कर जाती है कि उसका जीवन परोपकार में लगा रहे और वह व्यर्थ न जाय तो उसमें चमत्कारिक सुधार उत्पन्न होता है। उसकी बुद्धि को अच्छे कार्यों को सोचने के लिए वाध्य होना ही पडता है। वर्ष में कम से कम एक वार अपनी विगत वर्ष की भूलों का विश्लेषण करना चाहिए और कम से कम एक त्रुटि का त्याग अवश्य करना चाहिये। इस प्रकार के आचरण से मन की प्रत्येक बुराइयां स्वतः ही दूर हो जाती हैं। तव वर्ष के प्रारम्भ उच्च आदर्शों की तालिका बना कर जीवन—यापन प्रारम्भ करना चाहिये। जो व्यक्ति श्रेष्ठ पुरुषों के जीवन और अन्य सद् पुरुषों की आदर योग्य सम्मति की अवहेलना कर, केवल मात्र

अपनी सम्मति को ही सर्वोपरि समझते हैं, उनके लिये जीवन की दौड़ सम्भव नहीं रहती।

इसके विपरीत जो पुरुष या नारियां, कम बोलती हैं, अधिक सुनती हैं, परिचिताओं की गोष्ठियों से पृथक होकर एकान्त में सोचती और मनन करती हैं तथा दूसरी महिलाओं के गुणों को समझ कर उनको अपने जीवन में धारण करने का प्रयत्न करती हैं, वे शीघ्र ही उन्नति और सुधार के पथ पर अग्रसर होकर आत्मसत्कार का मार्ग प्रशस्त कर लेती हैं।

प्रत्येक महिला का यह कर्तव्य है कि वह अपने मन में यह विचारे कि वह जो कार्य कर रही है, वह किस की शक्ति से प्रेरित होकर कर रही है और किस के लिये कर रही है तथा मेरे कार्यों में कितनी विनम्रता है, कितना आत्मत्याग है और कितना ईश्वरीय प्रेम है तथा कितना मानव-प्रेम परिलक्षित होता है। मैंने परमात्मा की आज्ञाओं का किस सीमा तक अपने कार्यों में पालन किया है ?

जिन हृदयों पर सत्संग, स्वाध्याय और कर्तव्यानुष्ठान जैसे कार्यों के द्वारा उत्तम छाप नहीं पड़ती और जो केवल कुकर्मों में रत रहते हैं, उनका सुधार प्राय: असंभव होता है; परन्तु जब हम बड़े पापी, दुरात्मा तथा विलासी और आततायी व्यक्ति के जीवन में भी चमत्कारिक श्रेष्ठ परिवर्तन देखते हैं तो अनायास ही हमारे हृदय पर यह सत्य अंकित हो जाता है कि इन्द्रियों की आसक्ति सुख और शांति का अजस्त्र स्रोत्र नहीं होता, मनुष्य उनसे कभी न कभी उपरामता अनुभव करने के लिये बाध्य होता ही है और तब हृदय आत्मिक सुख के लिये छटपटाने लगता है। उस समय सच्ची ग्लानि और पश्चाताप का जरा सा प्रहार ही हृदय पर आघात का चमत्कार पैदा कर देता है, जिस कार्य को अनेक विद्वानों के प्रवचन, अनेक शास्त्रों के मनन और महापुरुषों के व्याख्यान भी नहीं कर पाते।



नारी जीवन में आत्मविश्वास और आत्मसम्मान

प्रत्येक नारी जीवन में आत्मविश्वास का अभाव पाया जाता है। परन्तु आत्मसम्मान की भावना प्रवल होती है। यह भावना होती तो पुरुषों में भी है; परन्तु नारियों में पुरुषों की अपेक्षा अधिक होती है। वहुत-सी महिलाएं यह नहीं सोचतीं कि वे अपने गुणों के कारण आदर की पात्री हैं भी या नहीं। उनकी मात्र अभिलाषा यही होती है कि केवल उनकी इच्छा के कारण ही उन्हें सर्वत्र सम्मान मिले।

इस स्थिति में जहां उन्हें आदर नहीं मिलता, वे वुरा मानती हैं, उन्हें आंतरिक कष्ट भी होता है। यदि वे वुरा मानने के स्थान पर अपने अन्तः करण को टटोल कर यह देख लें कि वे स्वयं अपनी दृष्टि में भी सम्मानित हैं या नहीं तव शायद उन्हें आंतरिक कष्ट का अनुभव न हो। उन्हें यह अनुभव होना चाहिये कि जो नारी स्वयं अपनी दृष्टि में ऊंची उठ चुकी है उसे अपने से या दूसरों से आदर पाने की अभिलाषा ही नहीं रहती।

वस्तुतः स्थिति यह है कि यह सव कुछ हमारे हृदय की स्थिति पर निर्भर है। हृदय हमारे प्रति अच्छी या वुरी सम्मति बनाया करता है। अतः अच्छी सम्मति तो तभी वन सकती हैं जव कि हमारे अन्दर विशेष गुण हों और हम उस सम्मति के अधिकारी भी हो; जो व्यक्ति केवल औपचारिक रूप से आदर व्यक्त करते हैं, वह वास्तव में आदर नहीं होता, उसके उपेक्षा के तत्व

भी विद्यमान रहते हैं और दया के भाव भी सम्मिलित होते हैं; क्योंकि आदर देने वाला भी यह जानता होता है कि आदर का पात्र न होने पर भी मैं इस लिए आदर दे रहा हूं ताकि इसका कोई बुरा न माने। यह तो दया की एक भीखमात्र हुई। इस आदर पर प्रसन्न नहीं हुआ जा सकता। अतः होना यही चाहिए कि अपने गुणों के बल पर ही दूसरों को आदर देने के लिए बाध्य किया जाय। जीवन में गुणों को ग्रहण करने पर ही कोई एक व्यक्ति ही नहीं समाज को राष्ट्र को आदर देने के लिए विवश होना पड़ता है, विवश किया जा सकता है। अतः आत्म-सम्मान के लिए जीवन में गुणों का आविर्भाव आवश्यक है और आत्म-सम्मान जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि बिना आत्मसम्मान के लिए नैतिकता धर्म-साधना और हमारी सदाचरण की प्रेरणा हमें प्राप्त नहीं हो सकती आत्मसम्मान के लिए जहां गुणों का ग्रहण करना अनिवार्य शर्त है, वहां जीवन में त्याग-भावना का उदय करना और भी आवश्यक है, क्योंकि कभी-कभी दूसरों के प्रति प्रेम-भावना के वशीभूत होकर विशेषकर अपने पति के प्रति अपने व्यक्तित्व को अत्यन्त विकसित करना पड़ता है। पति को हित-भावना के वशीभूत होकर कभी-कभी अपने निश्चय से भी हमें पीछे हटने के लिए विवश होना पड़ता है। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि हमारा बहुत कुछ लोक हित तथा प्रेम भावना से नियमित तथा प्रभावित रहता है; अस्तु इस त्याग के लिए भी यह अत्यन्त आवश्यक है कि यह प्रभावित होना अथवा नियंत्रित होना एक सीमा तक ही होना चाहिए। वहां भी सीमा का अतिक्रमण नहीं होना चाहिए। नैतिकता की रक्षा होनी चाहिये।

नारी जीवन में आत्मसम्मान एक स्रोत है जिससे सतत रूप से उत्साह और सदप्रेरणाएं प्राप्त होती रहती हैं और संसार में अपना मार्ग प्रशस्त करने के लिए भारी संबल प्राप्त होता है; किन्तु दम्भ और मिथ्या अभिमान की भावना कोरा अहंभाव होता है। अतः अहं और आत्मा सम्मान की भावना में भी अन्तर कर लेना चाहिए। इस आशय का तात्पर्य यह नहीं है कि अपने के लिए समझा जाय यदि हमने समझने की भूल जीवन में की

है तो वह एक अति भयानक भूल होती है; क्योंकि उसके कारण आत्म-सम्मान का स्रोत सूखता चला जाता है और जीवन में एक निष्क्रियता आती चली जाती है।

जहां तक आत्म-सम्मान की प्रवृति का सम्बन्ध है उसके लिए यह भी आवश्यक है कि रूप-रंग, वेशभूषा अथवा धन-वैभव के कारणों को लेकर आत्म-सम्मान की योजना अपने मन में कभी भी धारण नहीं करनी चाहिए। उसके लिए तो विशेष गुणों के जीवन में धारण करने की ही आवश्यकता होती है। यह अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि अपने द्वारा प्रत्येक को सम्मान मिले अथवा किसी के सम्मान को ठेस न लगे। आत्मसम्मान और आत्मसंयम जिन नारियों को प्राप्त हो जाता है वे मानवी होकर भी देवियां बन जाती हैं बड़ी से बडी भौतिक शक्ति भी उनका अहित नहीं कर सकती। प्रत्येक नारी के व्यक्तित्व में आकर्षण प्रकृति प्रदान भी होता है; किन्तु व्यक्तित्व के साथ-साथ ही उसकी वाणी में भी प्रभाव होना चाहिए। उसकी वाणी भी गम्भीर प्रभावशाली हो और चरित्र में सौन्दर्य हो। इस सीमा तक जाने के लिए प्रत्येक नारी को अपनी वासनाओं पर विजय प्राप्त करनी पड़ती है और इस विजय के लिए अपने हृदेय का ध्यान सदैव रखना पड़ता है। ऐसी अवस्था तभी प्राप्त होती है, जब सही आत्मा के आधीन हो जाता है और जीवन स्वार्थ का त्याग परमार्थ की ओर अग्रसर होने लगता है। उस समय प्रत्येक पापपूर्ण कर्म का विचार आत्मा मन में उठने ही नहीं देती। परिणाम स्वरूप एक अच्छे चरित्र का निर्माण प्रारम्भ हो जाता है।

चरित्र ही एक ऐसी वस्तु है जिसकी चिन्ता व्यक्ति को नहीं होती, उस की कीर्ति रखती है और चरित्रवान को कीर्ति के लिए भागने की आवश्यकता भी नहीं पड़ती, स्वयं कीर्ति ही छाया की तरह उसके साथ लगी फिरती है। कीर्ति बाहरी और चरित्र भीतरी वस्तु होती है। चरित्रका सम्बन्ध स्वयं अपने से होता है और कीर्ति का सम्बन्ध बाहरी लोगों से होता है; परन्तु वास्तविक कीर्ति वही है जिसका सम्बन्ध मनुष्यों की जबान से ही नहीं अपितु उनके हृदयों से हो।

इसके साथ ही यह भी सत्य है कि कीर्ति दूसरों की निन्दा से नष्ट नहीं हो सकती और चरित्र अपने सिवा अन्य के द्वारा नष्ट नहीं होता।

यदि कोई महिला किसी संकट अथवा दुर्दशा में फंस गई है तो उसे उस दुर्दशा के बारे में सोचना पड़ेगा ही, किन्तु अपने चरित्र का अवश्य ध्यान रखना चाहिए। यदि वह चरित्रवान है तो अपने चरित्र के बल पर ही अपनी दुर्दशा को बदल सकती है; क्योंकि परिस्थितियां सिद्धान्तों की चेरी हुआ करती है।



बाहरी आकृतियों से सावधानी

वर्तमान युग अत्यन्त छल कपट परायुग है। इस युग में किसी भी स्त्री पुरुष, वेश-भूषा अथवा चेहरे की भाव-भंगिमा से उसके चरित्र का अनुमान नहीं लगाया जा सकता। एक साधारण नारी की तो बात ही क्या हैं, इस बारे में बड़े-बड़े बुद्धिमान तक भूल जाते हैं। वर्तमान-काल ही ऐसा काल है जिस काल में साधु वेश में डाकू रहते हैं, सन्तों के वेश में ठग रहते हैं और समाजसेविका तथा राजनीतिक कार्यकर्ता के रूप में वेश्याएं रहती हैं।

देश में ऐसी राजनीतिक कार्यकत्रियो की भी कमी नहीं है जो अपने नाम के लिए चुनाव लडती हैं। यह चुनाव पार्टी और अन्य विभिन्न प्रकारों के साथ-साथ, वडे राजनीतिक भी होते हैं। उन चुनावों में धन की आवश्यकता होती हैं और धन की आवश्यकता की पूर्ति इनके पूंजीपति मित्र पूरी करते हैं। चुनाव मंच पर यह नेत्री है; परन्तु अपने निजी जीवन में न जाने कितने व्यक्तियों की रखैलें होती हैं। उनके साथ सभी कुछ खाती पीती हैं, घूमती हैं। यत्र-तत्र आती जाती हैं।

यह आवश्यक नहीं कि उसके इस क्रिया-कल्प से उसके परिवारी या पति भी सहमत हों नहीं भी होते, नहीं भी यह कहते कि वह ऐसा करे। पाबंदियां लगाने का भी प्रयत्न करते हैं, रोकने का भी प्रयास किया जाता है। कभी-कभी उसके उस कथित धनिक हित चिन्तक से भी प्रतिशोध लिया जाता है। और यह प्रतिशोध कभी-कभी हत्या करने तक भी पहुंच जाता हैं। परन्तु ऐसी औरतों को जो लत पड़ जाती है, वह आसानी से छूटती नहीं।

मुझे कलकत्ता की एक ऐसी ही नारी के चित्र का आज भी स्मरण हो आता है। यह अति सुन्दर महिला बहुत कम आयु की थी और एक प्रोफेसर की पत्नी थी। कांग्रेस की कार्य-कर्ता भी थी। पार्टी के चुनाव के अवसर पर बड़ी आसानी से बल्कि कहिये स्वेच्छा से एक नवयुवक पूंजीपति को उसने आत्म-समर्पण कर दिया। उस समय उसे पैसे की भी आवश्यकता थी और सहायक की भी। यह दोनों ही वस्तुएं उसे एक ही आदमी से प्राप्त हो गयीं।

उस समय उसका पति प्रोफेसर परेशान हो उठा। वह नहीं चाहता कि रात दिन उसकी युवती अन्य पर पुरुष के साथ घूमती फिरे उसके घर पड़ी रहे लेकिन नेता जी पर इस बात का प्रभाव तनिक भी नहीं पड़ा। उन्हें जो करना था किया ? दुनियां देखती रही, पति खीजता रहा और वह चरित्र की होली करती रही। यह एक ही घटना हो, ऐसी बात नहीं। प्रत्येक नगर मे ऐसी हजारों नहीं तो सैंकड़ों घटनाएं मिल जायेंगी। राजनीति हो या समाज सेवा या साहित्य सेवा, ऐसी प्रत्येक आकर्षक आड़ के पीछे बड़े-बड़े चरित्र-हीनों के जमघट दिखाई पड़ जाते हैं। तब बताइये वर्तमान युग में विश्वास किसका किया जाय और मनोविज्ञान का वह कौन सा आधार है जिसे कसौटी मान कर उनके वास्तविक चरित्र के बारे में किसी निश्चय पर पहुंचा जाय।

जिस युग में चरित्रहीनता की दूषित प्रवृत्ति के कारण मनुष्य सच्चरित्र का ढोंग रचता हो, उससे बचने का उपाय क्या है ? मैं पुरुष वर्ग की बात नहीं कह रही वर्तमान में मेरा विषय महिला वर्ग से है और वही इन ढोंगियों के कारण सब से अधिक ठगी भी जाती हैं। अतः उन्हें ही इनसे बचना है, या बचाना है।

प्रत्येक महिला का यह कर्तव्य होना चाहिए कि किसी भी अनजान व्यक्ति को चाहे वह समाज सेवक के रूप में हो या राजनीतिक नेता के लिबास में अथवा उन जैसा ही और कोई बाना धारण किए हुए हो। यका-यक विश्वास नहीं करना चाहिए। मैंने बहुत सी ऐसी महिलाओं को देखा है कि उन्हें जहां से धूर्त लोगों का धूर्त स्त्रियों की जरासी सहानुभूति प्राप्त होती

हैं वे अपने हृदय के द्वार उनके सामने खोल देती है। उस समय वे अपना बड़ा हितचिन्तक उस व्यक्ति या स्त्री को समझने लगती है।

कभी कभी इतनी भावनामयी हो बैठती हैं कि अपने विगत जीवन के उन गम्भीर राजों को भी खोल डालती है, जिनका ज्ञान सिवाय उसके या उसके पति के तीसरे व्यक्ति को नहीं हैं। ऐसे ही राजों में कभी-कभी परिवार के भी ऐसे राज खुल जाते हैं, जिन्हें नहीं खोलना चाहिए और जिन्हें खोलने से कोई लाभ भी नहीं होता, उल्टे कभी भी अपनी निन्दा होने का भय रहता है।

मान लीजिये एक पत्नी अपने पति की चर्चा करते समय यह कह बैठती है कि अजी पहले यह क्या थे। मेरे आने से पहले इनके पल्ले कानी कौड़ी भी नहीं थी। यह सब कुछ व्यापार तो मेरे पिता का हुआ। अथवा इनका तो दिवाला निकल चुका था, वह तो गनीमत समझो कि मेरे पिता ने इन्हें मेरी वजह से संभाल लिया। अपने पास बुलाया और व्यापार जमाया।

शिकायत का दूसरा रूप भी होता है। मान लीजिये एक पति का चरित्र निर्बल रहा है और बाद में उसने अपनी भूल को सुधारा है। यह ज्ञान केवल पति-पत्नी को ही हो। अब तीसरे व्यक्ति के सामने यह बात खुलेगी, कहेंगी, अजी इनकी कुछ मत पूछो, यह तो बड़े ऐसे-वैसे थे बड़ी मुश्किल से इन्हें सीधा किया है। इस लिए यह आवश्यक है कि ऐसी बातें तो जानकार के सामने भी नहीं खोलनी चाहिए अंजान की तो बात ही क्या है। इसलिए यह आवश्यक है कि बिना सोचे समझे या परखे अपना विश्वास किसी को नहीं देना चाहिए। जिनके विचारों, सिद्धान्तों और मन्तव्यों के विषय में आप निश्चिन्त हो जायें, कतिपय बातों पर उन्हीं से सलाह ली जा सकती है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि मनुष्य का सर्वश्रेष्ठ साथ वही होता है जो सीधा-साधा निष्कपट आडम्बर शून्य हो, जिसने जीवन का सदुपयोग करना जान लिया हो। जिनका स्वभाव विनम्र हो हृदय कोमल और शुद्ध हो, जो सत्य

प्रेरणामय हो और जिनकी चित्त वृत्ति दृढ़ हो, ऐसा व्यक्ति वह महिला हो या पुरुष आसानी से मिलता भी नहीं। इसका कारण पहला यह है कि उसके पास समय का अभाव होता है। वह अपने समय को व्यर्थ ही गंवाता नहीं फिरता इसके अतिरिक्त वह स्वार्थी भी नहीं होता। स्वार्थ के वशीभूत होकर वह किसी भी व्यक्ति के विशेषकर धनिक व्यक्ति के आगे पीछे नहीं फिरता यह कार्य स्वार्थी व्यक्ति ही किया करते हैं।

जितना भी बाहरी व्यक्ति से, अनजान व्यक्ति से बचा जाय, नारी जीवन के लिए उतना ही अच्छा है। ठगी जैसे कार्य केवल लालच के लिए ही किए जाते हों ऐसी भी बात नहीं है। कई बार तो ऐसा देखा गया है कि एक व्यवसायी दूसरे व्यवसायी से यदि ऐसा करता है और उसके व्यापार अथवा कीर्ति को नष्ट करने में वह असमर्थ हो जाता है, तब वह भी ऐसे नीच हथकण्डों का सहारा ले बैठता है।

वह नीच व्यक्ति प्रत्येक प्रकार के छल-बल से परिवार के जीवन की जासूसी करना प्रारम्भ कर देता है ताकि उसे कोई सूत्र स्रोत्र मिल जाय जिसे लेकर वह परिवार भर को बदनाम करने का प्रयास कर सके। कई बार ऐसे कार्यों के लिए ऐसी चतुर महिलाओं का प्रयोग किया जाता है जो उस परिवार में जाकर, परिवार की किसी महिला से सहेलीपना गांठ लेती हैं और ऐसी अंतरंग मित्र बन जाती है कि कोई न कोई परिवार की विशेष घटना उनके हाथ लग ही जाती है। यदि संभव न हुआ तो फर्म या मिल में अपने ऐसे आदमी घुसा दिये जाते हैं जो हानि का कारण बन जाते हैं; क्योंकि उन्हें अपने उद्देश्य में सफलता मिल चुकी होती है। इसलिये वर्तमान युग में यकायक न तो किसी पुरुष का विश्वास किया जा सकता है और न ही किसी नारी का।

यह तो साधारण लोगों की बात रही, जिनसे बचने की सलाह दी गयी है इनके अलावा वह लोग हैं जिन पर हमारी श्रद्धा है अथवा जिन्हें हम ज्ञानी

जन कहते हैं। इन ज्ञानी जनों में महिलाओं और पुरुषों का हृदय परिवर्तन कराने वाले भी मिलते हैं दूसरे शब्दों में इसे ही वशीकरण भी कह सकते हैं। भूत-प्रेत बुलाने और भगाने वाले भी मिलते हैं।

इसमें कोई किसी देवी का उपासक होता है तो कोई किसी अन्य देवता का, परन्तु सीधे कोई भगवान का उपासक भी होता है। वह शायद नहीं। यह लोग अल्पज्ञानी होते हैं। कोई-कोई तो बिल्कुल ही निराकार होते हैं। अध्यात्मवाद क्या वस्तु है या आत्मा अथवा परमात्मा में क्या भेद है। परमात्मा की उपासना अथवा आत्मा की निर्मलता किन उपायों पर निर्भर है, इसका ज्ञान इन्हें नहीं होता। इन में से एक वर्ग संख्या नशाखोरों की होती है। कोई सुलफा पीता है कोई चरस और कोई भंग भी फांकता है। बहुत से संत यहां शराब भी पीते हैं। यह सोचने की बात है कि जो लोग अपने ही जीवन को नहीं सुधार सके वह दूसरों के जीवन का सुधार क्या कर सकते हैं। इसलिये महिलाओं को इन ढोंगियों से भी बचना चाहिये।

—— o ——

उत्तम साहित्य का चरित्र पर प्रभाव

चरित्र विकास में उत्तम साहित्य जितना सहयोगी बनता है उतनी सहयोगी और कोई वस्तु नहीं बनती। गन्दे साहित्य को पढ़ने से मन पर बुरा प्रभाव पड़ता है और अच्छा साहित्य पढ़ने से अच्छा। बुरे साहित्य की तुलना शराब से की जाती है। उस में न तो मस्तिष्क अथवा शरीर के लिए पोषक तत्व मिलता है और न उससे औषधि का कार्य लिया जा सकता है। अत: गन्दे साहित्य से भी शराब की भांति शरीर और मन दोनों खराब होते हैं।

इन दोनों के खराब हो जाने से आत्मा भी विकृत हो जाता है और तब व्यक्ति के पास रह ही क्या जाता है। इसके विपरीत उत्तम साहित्य के पढ़ने से आत्मसंतोष तो होता ही है, वह एक सच्चे मित्र का काम भी देता है। परन्तु जिस प्रकार अच्छे मित्रों का चुनाव किया जाता है, उसी प्रकार अच्छी पुस्तकों का भी चुनाव करना चाहिए; क्योंकि अच्छी पुस्तकें ही आत्मा की औषधी होती है। पुस्तकें ऐसी होनी चाहियें जो विशेष आशा और विश्वास के साथ खाली हो जायें और लाभ प्राप्त करके प्रसन्नता के साथ बन्द की जायें। उत्तम पुस्तक वही है जो जीवन में पवित्रता प्रदान करती हो, जिससे बुद्धि विकसित होती हो, जो जीवन की सार्थकता का मान कराती हो और भावना को प्रतिष्ठा प्रदान करने वाली हो। जिनके पृष्ठ उच्च आदर्शो पर चलने की सलाह देने वाले हों और जिसके पृष्ठों में परोपकारी जीवन के प्रति आस्था हो जो सत्य का पथ बहलाती और जिसमें सच्चा ईश्वरीय आराधना की प्रेरणा हो - वही उत्तम पुस्तक है।

आज देश के सामने यह एक कठोर सत्य है कि यदि देश की प्रजा में और विशेषकर महिला वर्ग में धार्मिक साहित्य का प्रचार न किया गया तो धर्म-परायणता शनैः शनैः देश से विदा होती जायेगी और उसका स्थान निर्लज्ज अनीश्वरवाद लेता चला जायेगा। पहले यह प्रवृत्ति पुरुषों तक ही सीमित थी परन्तु अब यह धीरे-धीरे महिला वर्ग में फैलती चली जा रही है।

महिला वर्ग में इसके फैलने का कारण है अशलील साहित्य जो पाशविक वृत्तियों को जगाता है और सदप्रवृत्तियों का दमन करता है। यह साहित्य फैशन और कृत्रिम सौन्दर्य प्रसाधनों की भूख बढ़ाता है, अर्द्धनग्नता को प्रेश्रय देता है और देश में तेजी के साथ कामुकता फैलाता चला जा रहा है। यदि समय रहते इसे न रोका गया तो देश में एक दिन कुशासन, पतन, दुःख, भ्रष्टाचार और अन्धकार का बोलबाला हो जायेगा और उस समय इसका निवारण करना कठिन होगा।

इन गन्दे साहित्य के फैलाव को रोकने में सरकार को भी विशेष सहयोग देना चाहिये। गन्दे कवर पेजों पर प्रतिबन्ध लगाना चाहिये। ऐसे चित्र जो अर्द्धनग्न हों पूर्ण नग्न हों अथवा जिन्हें देखने से वासना जगती हो जब्त कर लेने चाहियें। देश में आजकल ऐसे चित्रों की बाढ़ सी आई हुई है। कभी कभी सरकार की नींद उचटती हैं तो दो एक किताबों को जब्त कर लेती है, उसके पश्चात पुनः वही स्थिति शुरु हो जाती है।

सरकार और समाज दोनों के लिए वर्तमान में उपयुंक्त वही रहेगी कि कुछ काल तक, कुछ समय तक महिलाओं को साहित्य के सृजन की ओर प्रेरित किया जाय। यह ठीक है कि साहित्य के क्षेत्र में पर्याप्त संख्या में महिलाएं आचुकी हैं और आरही हैं। उन्होंने साहित्य की श्री वृद्धि भी की है किन्तु यह भी सत्य हैं कि जितना प्रोत्साहन उन्हें मिलना चाहिए था, उतना नहीं मिला।

साहित्य के ऐसे बहुत से अंश हैं जिनका वर्णन किसी भी पुरुष साहित्य

कर की अपेक्षा—महिला साहित्यकार अच्छा कर सकती है। पुरुष केवल कल्पना कर सकता है, जब कि महिला सत्य का प्रतिपादन कर सकती है, तब क्यों न उन विषयों को महिलाओं से ही लिखाया जाय। स्त्रियों के पर्याप्त रूप में साहित्यिक क्षेत्र में आये विना मानव—साहित्य पूर्ण इसलिये नहीं हो सकता कि एक पुरुष केवल एक पुरुष की ही हृदयानुभूति को सफलता पूर्वक प्रकट कर सकता है। इसके विपरीत यदि उसे किसी नारी के हृदय की अनुभूति प्रकट करनी होती है, तब वह केवल कल्पना का आश्रय ही लेता है। उदाहरणार्थ किसी वधु का उल्लास किसी माता का वात्सल्य अथवा किसी महिला के पतिव्रता सम्बन्धी विचारों का विश्लेषण एक नारी ही भली प्रकार कर सकती है न की कोई पुरुष लेखक कर सकता है। वह तो उस समय भी कल्पना का ही सहारा लेगा।

मातृ हृदया की मीमांसा का वर्णन, सौतिया डाह की स्थिति का विश्लेषण शिशु—क्रीड़ा की प्रेम मयी भावना का दिग्दर्शन जितना अच्छा कोई नारी लेखिका करा सकती है उसकी तुलना में पुरुष फीका रहेगा। पारिवारिक जीवन के एक पहलू अपनी ओर के—पर तो पुरुष प्रकाश डाल सकता है; किन्तु समस्त पारिवारिक जीवन का विश्लेषण एक नारी ही कर सकती है। यही कारण है कि पुरुष द्वारा नारी हृदय की व्याख्या पूर्ण रूप में कभी नहीं की गयी, उसके स्थान पर ससंगत कल्पनाएं की गयीं और इन कल्पनाओं ने नारी जीवन को पर्याप्त हानि ही पहुंचेगी है—लाभ नहीं।

पुरुषों की इन गलत कल्पनाओं का खंडन भी करता कौन? अपने ग्रहस्थ जीवन, संकोची स्वभाव और शिक्षा के अभाव के कारण—पुरुषों ने उसके प्रति जो कुछ लिख दिया, वह उसने स्वीकार कर लिया। यही कारण उसके स्वलेखन की असफलता का भी हुआ। क्योंकि अपने कलम के माध्यम से वह जीवन की विविधता को भली भांति नहीं दर्शा सकी। इसके अतिरिक्त नारी का मातृत्व और उसकी आर्थिक विषमताएं भी उसके अध्ययन और लेखन में बाध्य रहीं। शिशु— पालन में व्यस्त रह कर वह अपनी रचनाओं अथवा

अपने विचारों को लेख वद्ध होने का अवसर ही नहीं पा सकी। इसके विपरीत उसका क्रियाशील मस्तिष्क कम आय में परिवार के गुजारे के अनुसंधानों की खोजों में ही लगा रहा।

इसके अतिरिक्त उसका परिवर्तित जीवन भी इस प्रकार की वाधा में मुख्य सहायक होता है। अपने पिता के घर साहित्य में अनुराग रखने वाली कन्याएं जव सुसराल आती हैं तव उनके सामने परिस्थिति वदली हुई होती है। वहुत वार उन्हें न तो सुसराल में अपेक्षित साहित्य मिलता है और न अवसर। परिणामतः उनकी वुद्धि कुंठित होने लगती है।

वर्तमान काल में भी जितनी साहित्य जगत में आयी हुई महिलाएं हैं, वे या तो आर्थिक प्रयोजन से आयीं हैं अथवा कुछ ऐसी भी हैं जिन्हें साहित्य में विशेष रुचि हैं, परन्तु यह एक आश्चर्य की वात है कि जितनी सेविकाएं आज हमारे सामने उपस्थित हैं उन में से किसी ने कभी भी यह प्रयास नहीं किया जिससे यह लक्षित होता हो कि उन्होंने नारी जीवन अथवा नारी जीवन की विधा पर कुछ ठोस कार्य किया है। अतः आज हमें कथा सेविकाओं के दर्शन भी होते हैं और वड़े-वड़े शोध-ग्रन्थों की रचियिताएं भी हमारे सामने हैं, परन्तु नारी का गृहस्थ जीवन, नारी का दायित्व अथवा नारी जीवन के अनिवार्य गुणों पर किसने कलम चलाई है। यह कलम यदि चलाई भी है तो केवल पुरुषों ने। इन्होंने अधिकांशतः आलोचनाएं की हैं। अपने नारी जीवन के चरित्र-चित्रण, सुधार या पतिव्रत-धर्म जैसे सामायिक, सामाजिक और अनिवार्य विषय से सदैव वच कर चलती रही हैं। इस विषय को यदि थोड़ा वहुत हाथ में लिया है तो समाज सुधार की प्रवृत्ति वाली दो-चार महिलाओं ने अपने विचार उपदेश या वयान छापकर निःशुल्क वितरण करके। महिला लेखिकाओं में एक-दो ऐसी अवश्य हैं जिन्होंने शिशुओं के वारे में कुछ लिखा है। उनके पालन-पोषण पर प्रकाश डाला है।

उनकी उपेक्षा का कारण एक नहीं कई हैं। पहला कारण है उनकी शिक्षा पुरुषों के साथ ही होती है। जो विषय लड़कों का है वही लड़कियों का है।

जो वातावरण कालेजों में लड़के निर्माण करते हैं, उसी का प्रभाव उन पर पड़ता है। उनके लिए अलग विषय नहीं होता। परिणामत: वह भावी नारी जीवन से बिल्कुल ही अनभिज्ञ रह जाती है। उस दशा में उन्हें पति या परिवार के प्रति दायित्व का भान तनिक भी नहीं होता।

दूसरा कारण है, घरेलू शिक्षा का। घर पर भी माता पिता का ध्यान यही रहता है कि उनकी लड़की कालेज की कितावों की रटाई अच्छी तरह से करें ताकि उसकी डिविजन अच्छी बन सके। उनके मन में यह धारणा कभी नहीं बैठती कि उनकी लड़की को पराये घर भी जाना है और वहां पर विपरीत वातावरण में रहना है। अत: वह घरेलू शिक्षा की ओर ध्यान नहीं दे पाते।

कालेज के अतिरिक्त जिस प्रकार का दूसरा साहित्य उनके हाथ में आता है वह अतिरंजित होता है, उसकी प्रतिक्रया उनके हृदय पर होना तो यह चाहिए कि वह उसके विपरीत अच्छा साहित्य लिखें लेकिन होता इसके सर्वथा विपरीत है, उल्टे वह भी उसी बाढ़ में बहने लगती है। यथार्थ के नाम पर वह भी जो साहित्य लिखती है, उसे प्राढाओं के लिये मनोरंजन की संज्ञा तो दी जा सकती है - ज्ञान की नहीं।

उनके द्वारा रचित साहित्य मे पुरुषों की भर्त्सना मिलेगी, निन्दा होगी या उन्हीं की भांति प्रेम-प्यार की बातें होंगी, किन्तु नैतिकता का सर्वथा अभाव होगा। उनमें सास-स्वसुर या पति की बुराईयां तो हो सकती है, परन्तु आपके कर्तव्य की कोई बात नही होगी। नारी स्वतन्त्रा नारी अधिकार, पर्दे का बहिष्कार सब कुछ मिल सकता है, किन्तु नारी के अर्द्धनग्नवाद पर कुछ नहीं मिलेगा। उनके कामुक परिधानों की निन्दा किसी नारी के साहित्य में नही मिलती। इसलिये नारी शिक्षा में ही पूर्णतया परिवर्तन की आवश्यकता है। जिस से आगे चलकर वे एक अच्छी लेखिकाएं बन सके और अच्छी व्याख्याता बन कर समस्त सेवा भी कर सकें।

पुराणों और इतिहासों में ऐसे साहित्यों के वर्णन मिलने अनिवार्य हैं, जिन्होंने बड़े-बड़े धार्मिक ग्रन्थों की रचना भी की है, लेकिन उनकी संख्या रही कितनी है, मात्र उंगलियों पर गिनने के लायक। यही स्थिति आज है। इसके अतिरिक्त दूसरा कटु सत्य यह है कि यह स्वतन्त्रता और स्वतन्त्र स्वयंवराता केवल मात्र मंत्र या कलम तक तो सब कुछ है अर्थात स्वान्त: सुखाय की स्थिति में रहती है, किन्तु घर जाते ही इनकी स्थिति बदल जाती है।

उस समय यह अपने उस पुरुष की चेरी बनने का नाटक करती हैं, जिस की आलोचना अभी कुछ ही पहले प्लेटफार्म पर करके आयी है या जिसके आचरण की कड़ी आलोचना अपने लेख में अभी लिखकर आई हैं। ऐसी भी मिल जायेंगी जो नारी स्वतन्त्रता का दम भरती हों और उसके बाद किसी पुरुष साथी का समर्पण करती हों।

हमारी दृष्टि में कई ऐसी लेखिकाएं हैं, जिन्होंने कई-कई शादियां एक के बाद दूसरे से की। कई ऐसी कवित्रियाँ भी हैं जिनकी पटरी अपने पति से नहीं बैठी और उन्होंने या तो किसी धनिक व्यक्ति से या किसी कुछ ख्याति प्राप्त व्यक्ति से शादी की। इन सभी कारणों को जानने की आवश्यकता है। पढ़-लिख कर न तो वह अपने को सुधार सकी और न अपने पति को ही सुधार सकीं, तब ऐसी शिक्षा का क्या लाभ रहा। उल्टे वह समाज के लिए गलत उदाहरण बन गयीं उत्तम आदर्श नहीं बन सकीं।

इसके अतिरिक्त बहुत सी महिलाओं का त्रस्त होकर आत्म हत्या तक करते रोका गया। उनकी शिक्षा भी उन्हें जीवन का बोध नहीं करा सकी। जीवन में शिक्षा के ज्ञान द्वारा प्रकाश लाने में वह असफल रही।

मेरे सामने ऐसे भी कई द्रष्टान्त हैं सेठों के उन लोगों ने वर्तमान जागरुक युग में भी शब्द नहीं। बारह-बारह और चौदह-चौदह शादी कीं और जीवन के उत्तरार्द्ध तक भी उनका यह रोग। बढ़ता ही चला गया। इसके साथ ही आश्चर्य यह था कि उनकी भाषाएं अच्छी शिक्षिता उच्च शिक्षा

प्राप्त बी० ए० और एम० ए० ही नहीं अपितु लेखिकाएं और कवियित्रियां थीं। उनकी इस शिक्षा को किस रूप में लिया जाय। पुरुषों के लिए यह कहा जा सकता है कि वह चरित्रहीन प्रकृति के थे। उनके जीवन में यह एक शौक था चाव था या रोग था, लेकिन उन नारियों के चरित्र को क्या किया जाय, उन्हें चरित्र की दुर्बल भी नहीं माना जा सकता ऐसा इसलिए नहीं कि कोई भी स्त्री अपनी युवावस्था जीवन के उत्तरार्द्ध में पहुंचे हुए पुरुष से शादी करना पसन्द नहीं करती।

उनके इस कार्य को शौक भी नहीं माना जा सकता। यदि शौक होता तो उनका चुनाव कोई सामान्य साधारण या निम्न स्तर का पुरुष हो सकता था। यही बात रोग के बारे में भी लागू है।

अब प्रश्न उठता है तो वह कारण क्या था। रूप और यौवन एक साथ था। शिक्षा उनके पास थी तब क्या पैसे के लिए उन्होंने अपने जीवन का होम किया ताकि उस धनिक व्यक्ति के साथ उनका नाम भी जुट जाय। उस की सम्पत्ति में वह भी मर्यादा बन जायें। बात तो निश्चय ही यह थी। परन्तु प्रश्न यह है कि उनकी वह उच्च शिक्षा किस काम आई। जीवन का कौनसा आदर्श वह समाज के सामने रख सकीं और कौन सा समाज का हित भी किया। केवल जीवन पर सौतिया डाह से जलने के अतिरिक्त उन्होंने क्या पाया। यदि धन की आवश्यकता थी तो जितना धन उन्हे जीवन के लिए आपेक्षित था, उतना धन तो वह जीविका अर्जन करके भी कमा सकती थी। वह उनके लिए इज्जत का भी कारण होता और आत्मसंतोष का भी, लेकिन क्योंकि उनके विचारों का परिस्कार नहीं हुआ था, अत: वह भोगवाद की ओर दौड़ी। इसका स्पष्ट आशय शिक्षा सिद्धान्तों में फेर बदल को स्पष्ट करता है।

———०———

मानसिक तनाव की स्थिति

नारी जीवन में यूं तो मानसिक तनाव विवाह के पश्चात न जाने कितनी वार विविध कारणों से आता जाता रहता है, किन्तु वास्तविक और स्थायी जैसा मानसिक तनाव जो मस्तिष्क की शिराओं में खिचाव पैदा कर हृदय तक को आघात पहुंचाने लगता है, उसका आगमन प्रौढ़ावस्था के ढलान के साथ-साथ प्रारम्भ हो जाता है।

उस समय नारी के सौन्दर्य का उतार होता है और घर-गृहस्थी झमेला वढ़ा हुआ होता है। उस समय प्रत्येक ऐसी आयु की स्थिति निश्चित ही घर की स्वामिनी वन चुकी होती है और उसे अपने सम्मान के प्रति सव ओर से सजग रहना पड़ता है।

यदि पति की आयु उसकी स्वयं की आयु से अधिक न होकर लगभग वरावर होती है, तव उसे पति की ओर भी ध्यान रखना पड़ता है। अपनी सूक्ष्म दृष्टि से यह देखना पड़ता है कि आयु के इस ढलान अर्थात सौन्दर्य के इस ह्रास का प्रभाव उसके पति पर तो नहीं पड़ रहा है। क्या पति के हृदय में उसका सम्मान अव भी अक्षुण्य ही है या उस में शिथिलता आई है।

ऐसी अवस्था में कभी-कभी वहुत सी महिलाएं अपने पतियों के आचरण पर निरर्थक सन्देह कर वैठती है और अपने शरीर में मानसिक तनाव को उत्पन्न करने की भूल कर वैठती है। कभी कभी उनका सन्देह निरर्थक नहीं होता। सार्थक होता है। यदि सन्देह सार्थक होता है तव मानसिक तनाव की

स्थिति भयंकर हो जाती है। उस अवस्था में यदि कोई समझदार पत्नी अपनी या अपने परिवार की मर्यादा को घ्यान में रखते हुए कोई दु:साहस का कार्य न भी करे तब भी उसके शरीर में नाना प्रकार की व्याधियां अपने घोंसले बना लेती है। जिनमें ब्लैड प्रेशर हृदय और मस्तिष्क के रोग मुख्य हैं। कम समझ वाली महिलाएं तो आत्महत्या तक करते देखी गयी हैं।

पति के अतिरिक्त उसकी दृष्टि पुत्रों और पुत्र-वधुओं पर केन्द्रित होती हैं। उनके आचरण से वह यह अनुमान लगाती है कि अमुक पुत्र की दृष्टि में उसकी स्वयं की इज्जत अधिक है या वह अपनी माता की अपेक्षा अपनी पत्नि को मान अधिक देता है। उसके आज्ञाकारी आचरण में पत्नि के कारण शिथिलता तो नहीं आती जा रही।

उसके साथ ही वह पुत्रवधु के क्रिया-कलापों पर भी नारी दृष्टि डालकर यह जानने का प्रयत्न करती हैं कि उसकी पुत्रवधु उसे अपनी माता से कम मानती है या अधिक। उसकी मान्यता इस घर में आकर कितनी और किस प्रकार वदली है। यहां तक नहीं वह यह भी जानने का प्रयत्न करती रहती हैं कि स्वयं उसके पुत्र की इज्जत, उसकी नजरों में कितनी हैं। क्या वह मान मर्यादा के मामले में अपने भाई को अपने पति के स्थान पर अधिक महत्व देती है। क्या सुसराल वालों और नैहरवालों की तुलना में उसका झुकाव नैहर वालो की ओर अधिक है। इसके अतिरिक्त क्या वह अपने पति पर ऐसा तो प्रभाव नहीं डाल रही कि वह अपने माता-पिता से अलग हो जाय या उसकी दृष्टि में माता-पिता का सम्मान कम हो जाय।

कभी-कभी विचारने के कारण अनायास ही उत्पन्न हो जाते हैं और वह कारण निस्सार होते हुए भी साकार वनते देखे गये है। ऐसी स्थिति में अपने पुत्र और पुत्र-वधु के किसी सन्देहशील सूत्र को पकड़ कर ऐसी महिलायों के मानसिक तनाव उत्पन्न हो जाता है और फिर वह प्रत्येक कार्य का विवेचन करने लगती है।

यह ठीक है कि ऐसी घटनाएं अधिक नहीं होती। अविक घटनाएं सार-युक्त होती हैं। आधुनिक युग की पत्नियां अपनी अपनी रुचि, पहिचान ही नहीं, अपना पति भी अपनी रुचि के अनुकूल पसन्द करती है। इस तरह की पत्नियां सामान्य घरों में ही नहीं, बड़े-बड़े घरानों तक में पाई जाती है जो अपने पति के सरल निश्च्छल शील स्वभाव और गुण को न देखकर केवल देखती हैं उसका रंग। उनकी दृष्टि में पति का रंग गोरा होना चाहिए, मानव गुण भाड़ में जाएँ। वास्तव में ऐसी स्त्रियों के संस्कार उनके माता-पिता के घर वहुत समय पहले ही हो जाते हैं और उनके दिलों पर पड़े वह धब्बे छुटाये नहीं छुटते। अतः ऐसी स्त्रियां पति या परिवार की मान-मर्यादा का ध्यान न रख कर कभी-कभी नौकरों तक का आश्रय ले बैठती है। वह नौकर घर का नौकर भी हो सकता है, कालेज जीवन का साथी भी हो सकता है और पड़ौस का कोई गन्दा लड़का भी हो सकता है। ऐसे नौकर घर से निकल कर या छुटकारा दिलाकर जो दुर्गति ऐसी महिलाओं की करते हैं, उनके प्रमाण कलकत्ता, बम्बई और दिल्ली जैसे महानगरों में देखे जा सकते हैं। उस समय उन्हें अपना कलंकित जीवन चलाना भी कठिन हो जाता है। अतः घर की मालकिन का वर्तमान समय में पुत्र या पुत्र-वधु पर सतर्क दृष्टि रखना बुरा नहीं है। इसके रखने से मानसिक तनाव तो उत्पन्न हो सकता है किन्तु इसके न रखने से कभी-कभी परिवार या घर में अनर्थ भी हो जाता है।

आयु के ढलते दौर में मानसिक तनाव केवल पति के कारण कम, परिवार के कारण अधिक होता है, अतः उस स्थिति में अपने को संभाले रखना अत्यन्त आवश्यक है। उस समय जीवन हार जाना तो जीवन से थक जाना, अपने को तोड़ लेना है। उस स्थिति को वचाये रखना आवश्यक हो जाता है, जिसमें अपने पुत्र या पुत्र-वधु के कार्यों पर खीज जाती हो अथवा जिसमें बच्चों के खेल कूद या उसकी कूक जैसी आवाज भी सर में लगती हों। उस समय जीने की आशा क्षीण होने लगती है और मरने की अभिलाषा बढ़ने लगती है।

पहले मानसिक तनाव सेहत खराब करता है और सेहत की खराबी

स्वभाव को विकृत कर देती है और यह विकृती ही स्वयं उसके जीवन के लिए भयानक बन जाती है तथा परिवार के लिए कष्टदायक। इस मानसिक तनाव को (डिप्रेशन) मानसिक निरूत्ताह रोग भी कहा जाता है और वास्तव में यह है एक रोग ही। यह भावात्मक प्रतिक्रिया केवल परिवार या पति के कारण ही उत्पन्न हो जाय ऐसा नहीं है कभी कभी शरीर के अन्दर स्वत: भी उस समय उत्पन्न हो जाती है जब मासिक स्राव की स्थिति समाप्ति की ओर बढ़ती है या उसकी एकाएक समाप्ति हो जाती है।

उस समय स्वभाव में चिढ़चिड़ापन आवश्यकता से अधिक जीवन तथा दूसरे कार्यों की चिन्ता और मन में संशय की मात्रा बढ़नी आरंभ हो जाती है। यह दशा विशेष रूप से गम्भीर तो नहीं होती, लेकिन गम्भीर बन जाती है या बना दी जाती है। वे भावात्मक प्रतिक्रियाएं जीवन के महत्वपूर्ण कार्यों को नहीं अपितु स्वयं के व्यक्तित्व तक के लिए खतरा पैदा कर देती है। एक ओर आयु के उत्तरार्द्ध का खतरा और दूसरी ओर शरीर में ऐसी विसंगतियों का उत्पन्न होना जीवन के लिए कष्टदायी हो जाता है।

ऐसी स्थिति में बहुत कम महिलाएं ऐसी होती हैं जो कभी आई हुई परिस्थितियों के अनुरूप अपने को टाललें। कभी ऐसा भी होता है कि परि-स्थितियां इतनी जटिल हो जाती है कि उन्हें सुलझाने में सफलता नहीं मिल पाती परिणामत: इच्छित सन्तुष्ट जिसकी जीवन कामना करता है नहीं मिल पातीं। विकृति की स्थिति इस सीमा तक बढ़ जाती है कि ऐसी महिला को अपने अतीत की घटनाएं रात-दिन कुरेद कर व्यथित करती रहती हैं।

उसे अनुभव होता है कि उसके जीवन के प्रारम्भिक स्वप्न में पूरे नहीं हुए तब तब तो जीवन के उत्तरार्द्ध में पूरा करने का समय ही निकल चुका है। जीवन की सफलता की वेला समाप्त हो चुकी है, सारे अवसर जा चुके हैं। उस समय हृदय विद्रोही बन जाता है परिवार के लिए भी और स्वत: के लिए भी।

अपनी इस विचार धारा में अपने पति पर भी कभी-कभी आश्वासन की झलक दिखाई देती है। उसे अनुभव होता है कि उसका पति उसमें अब कोई रुचि नहीं रखता, क्योंकि उसकी आयु बढ़ चुकी है, ढल चुकी है।

इन मासिक तनावों में तब वृद्धि और होती है जब परिवार किसी आर्थिक संकट में फंस जाय या स्वयं को ऐसा लगे कि किसी का आश्रित होकर जीवन व्यतीत करना पड़ेगा। अतः घर का टूटना या कहिए परिवार का टूटना जीवन को तोड़ने वाला सिद्ध होता है।

ऐसी अवस्था में या स्थिति में यह अनिवार्य है कि एकाकी न रह जाय अर्थात एकान्त का जीवन विताना अत्यन्त हानिकारक है। जीवन को धार्मिक या सामाजिक कार्यों में उलझाये रखना आवश्यक है। गम्भीरता की आदत को भी छोड़ना चाहिये। भले ही पहिचान के लिए यदि उत्तम पुस्तकें सुलभ नहीं हैं, तब छोटे बच्चे तो सुलभ होते ही हैं। उनसे मनोविनोद किया जा सकता है, क्योंकि स्राव बन्द होने से शरीर के अन्दर जिन क्रियाओं का उलट-फेर प्रकृति करती है, उनका दुष्प्रभाव उसी पर पड़कर मानसिक तनाव उत्पन्न नहीं कर सकता, क्योंकि यह समय जब कि पुत्र और पुत्र-वधु या वधुएं घर-गृहस्थि के कार्य को संभाल लेते हैं, तब अवकाश अधिक मिल जाता है, अतः इस अवकाश का सुयोग परहित में भी यदि करना सम्भव नहीं है, तब निज हित में तो अवश्य ही करना चाहिए। उस समय अपने मन में यह कारण नहीं लानीं चाहिए कि उसकी आवश्यकता अब किसी को नहीं है, यह सोचना ही निराश को जन्म देना है और ऐसी निराशा ही बढ़ कर शरीर में मानसिक तनाव का कारण बन जाती है। यह मानसिक तनाव ही पति परिवार और स्वयं के लिए त्रास-दायक होता है गृह-कलह का कारण बनता है। जीवन में कोमलता का स्थान कर्कशा प्रवृत्ति ले लेती हैं उस समय परिवार में उसकी किसी सदस्य से नहीं बन पाती यहां तक कि कभी-कभी अपने पुत्र और पुत्र-वधु में कोई कार्य नहीं करती, वह उनकी सहायक बनने के स्थान पर आलो-चक बन जाती है। उसकी यह आलोचना ही गृह-कलह का मूल है।

इस प्रवृति को अर्थात मानसिक तनाव को गृह-कलह का मूल न वनने देना परिवार या पति से अधिक नारी पर निर्भर है। उसे यह स्वयं महसूस करना चाहिए कि यह सारा उलटफेर एक रोग है। शरीर में नया रोग बुढ़ापे के वढ़ने के कारण प्रकृति द्वारा उत्पन्न उलट-फेर का परिणाम है, जिससे साव-धान रहना आवश्यक है। ऐसी स्थिति जव वढ़ जाती है तव वहुत सी महिलाएं आत्म-हत्या तक पर उतारू होजाती हैं। इस लिये एकांत का यदि सेवन किया जाय तव वह स्वाध्याय के लिए होना चाहिए या पढ़ने के लिए होना चाहिये अन्यथा पूजा-पाठ के अतिरिक्त एकान्तता की आदत को भी त्याग देना चाहिए यह रोग केवल साधारण गृहस्थ महिलाओं में ही उत्पन्न होता हो ऐसी वात नहीं है। वड़ी-वड़ी धार्मिक प्रवृत्ति वाली ऐसी महिलाओं के अन्दर भी होता है और हो सकता है, जिनका जीवन समाज सेवा सरीखे कार्यों में वीता है, क्योंकि यह तो प्रकृतिप्रदत्त एक नियम है।

यह मानसिक तनाव जिसका वर्णन ऊपर किया गया है आयु के ढलान तथा स्राव समाप्ति की अवस्था में प्रकृति द्वारा उत्पन्न होता है, लेकिन इससे पूर्व जो मानसिक तनाव उत्पन्न होता है और ऐसी अवस्था मे होता है जवकि घर मे जीवन के सभी साधन सुलभ होते है और परिवार भी सम्पन्न होता है तव पति-पत्नि की कल्पनाओं के तार भंग होने पर होता है। जो ताना वाना वे विवाह से पूर्व वुनते हैं, उसमें पड़ा व्यवधान भी मानसिक तनाव को जन्म है और जीवन में अनेक वर्जित आदतों को डाल देता है।

इसका मुख्य कारण यह है कि विवाह के वाद पति-पत्नि एक दूसरे को साधारण रूप में ग्रहण करने की अपेक्षा एक आदर्श रूप मे यह कहिये काल्प-निक आदर्श रूप में देखना चाहते है। शनैः शनैः जव दूसरे के सही रूप को पहचानने लगते हैं, तव आदर्श वादिता का काल्पनिक ढाचा लड़खड़ा जाता है अतः ऐसी स्थिति में मन में असन्तोष का जन्म होता है और परस्पर विवाद या आरोप-प्रत्यारोप का प्रारम्भ होता है। इस दशा में उचित तो यही है कि पत्नि भी रोकर या थोड़ा वहुत कह सुन कर अपना मन हल्का कर ले, जैसा

कि साधारण घरों में होता है । इसके विपरीत यदि पति के प्रत्यारोपों अथवा घुड़कियों की घुटन को वह अन्तर में सहज लेती है तब भी मानसिक तनाव हो जाता है ।

विरली ही ऐसी महिलाएं मिलेंगी जो इन घुड़कियों को संजोकर और अपनी घुटन को सहकर भी जीवित रहें या सदाचार पर आरुढ़ या पागलपन से बची रहे । पिछले पृष्ठों में हमने जिस महिला रत्न का वर्णन किया है उन्होंने ऐसी घुटन को भी शिव के गरल पान करने की भांति पिया और मानसिक तनाव से भी बची रही । लेकिन ऐसी शक्तिशाली आत्मा वाली नारियां विरली ही मिलती हैं ।

जहाँ तक पारस्परिक विसंगतियों का और उनसे उत्पन्न तनाव का सम्वन्ध है वे वड़ी अद्भुत और विलक्षण इसलिये होती हैं कि अन्ततः उनका सम्वन्ध भी तो मन से, हृदय से ही होता है । अर्थात हृदय की विसंगतियां ही हृदय में ही मानसिक तनाव पैदा करती है । इसलिए ऐसी विसंगतियों का कुछ और स्पष्टीकरण कर देना भी उचित है ,

वस्तुतः नारी और पुरुष दोनों मानव है । दोनों के अन्दर आत्मा का भी निवास है और हृदय भी है । अतः मन अर्थात हृदय में भावनाओं का या अभिलाषाओं का उदय होना भी अनिवार्य है । शारीरिक बनावट के अनुसार भावनाएं कुछ भिन्न हो सकती है, लेकिन जहां तक मर्यादा का प्रश्न है, उस में शरीर की रचना की भिन्नता बाधक नहीं होती । अतः वैवाहिक जीवन में अन्यान्य अभिलाषाओं के अतिरिक्त पति-पत्नि दोनों ही एक दूसरे से यह अपेक्षा रखते हैं कि सामाजिक और पारिवारिक, दोनों ही स्थानों के जीवन में, दोनों सदैव एक दूसरे की अभिलाषा और रुचि का ध्यान रखेंगे और जव एक दूसरे की व्यक्तिगत रुचि का ध्यान नहीं रखता तब विरोधाभास आरम्भ हो जाता है । यह विरोधाभास भी विभिन्न प्रकार का होता है । यदि पत्नि कहती है कि तुम मेरा इतना भी ध्यान या मान नहीं रखते जितना कोठी के

कुत्ते का अपने किसी शौक का रखते हो या मेरे माता-पिता तो तुम्हारी दृष्टि में कोई महत्व ही नहीं रखते तब पति बहुधा यही उत्तर देता है कि "तुम्हें अपने बाप का बड़ा अभिमान है"।

पति-पत्नि के ऐसे विवाद कुछ सही आधारों पर आधारित होते हैं और कुछ गलत फहमियों पर। अधिकांशतः गलत फहमियाँ भी मानसिक असन्तोष का निस्तर उत्तेजित करती रहती है। अतः अच्छा यही है कि उन गलत फह-मियों का निराकरण कर लिया जाय। यदि ऐसा शीघ्र कर लिया जाता है तब मानसिक असन्तोष को उत्तेजना नहीं मिलती और शीघ्र समाप्त हो जाता है।

———०———

प्रारम्भिक झगड़े और उनका निदान

अधिकांश झगड़ों की जड़ किसी न किसी रूप में प्रारम्भ में ही जम जाती है और यह भी ठीक है कि प्रारम्भिक अवस्था में कतिपय कारणों से वह बढ़ नहीं पाता इन कारणों में जहां और अनेकों कारण होते हैं, उनमें प्रबल कारण एक का दूसरे को त्यागने का भय भी होता है। अतः उस अवस्था में झगड़े का रूप या तो भूख-हड़ताल सत्याग्रह या दुराग्रह सरीखा रहता है या वाक्य-वली प्रश्नवाचक सरीखी बन जाती है। उदाहरणार्थ यह होना है नहीं क्या ? वहां चलना नहीं हैं क्या ? आज खाना नहीं है क्या ? आदि।

यदि पति के ऐसे प्रश्न होते हैं तो पत्नि के भी उत्तर ऐसे ही होते हैं। आपको क्या पड़ी है। आपकी बला से ? तुम्हें इन बातों से अब वास्ता ही क्या" ? आदि। यह अवस्था भी बड़ी अदभुत होती हैं। इसमें प्रारम्भ में खुल कर लड़ाई-झगड़ा नहीं होता। होते है व्यंगबाण। यह जरूर होता हैं कि दोनों एक दूसरे को परास्त करने के अवसर और कारण खोजते रहते हैं और जीवन के ऐसे मार्मिक स्थलों के खोजने में व्यस्त हो जाते हैं जिन पर किया गया आघात तिलमिलाने वाला हो अर्थात हृदय पर सीधा आघात कर जाय। लेकिन कभी-कभी ऐसे अवसर भी प्रकृति की ओर से अनायास उपस्थित हो जाते हैं कि एक दूसरे का मानवीय शासन-सेवा भावना से परास्त कर देता हैं और उसके हृदय को जीत लेता है। तब सादा झगड़ा दुखद वातावरण में बदल जाता है। अतः प्रत्येक पति-पत्नि का कर्तव्य है कि ऐसे अवसर का स्वागत करे और सदुपयोग करे, क्योंकि ऐसा अवसर स्वयं ईश्वर उपस्थित करते हैं।

यदि ऐसा नही होता तब विवाद आगे चलता है और विवाह के दोनों पक्ष अपने माता पिता की भूल कहने लगते हैं कि वे ठगाई में आ गये। उन्होंने कुछ देखा भाला ही नहीं। उन्होंने सूरत से ही सीरत का अन्दाजा लगा लिया उन्होंने पास पड़ौस में भी तो जानकारी नहीं की।

ऐसे झगड़े यदि पति–पत्नी अपनी बुद्धि से नहीं सुलझा पाते, तब यह जीवन के उत्तरार्ध्द में तब समाप्त होते हैं, जब उनके बच्चे बड़े हो जाते हैं और उन बड़े बच्चों के सामने लड़ते उन्हें शर्म आती है। उस अवस्था में जीवन में एक नयी घुटन का जन्म होता है। इच्छाएं बदल जाती हैं और व्यक्ति पुरातन की ओर उस ओर जिस काल में वह बचपन में था—जाना चाहता है। उन साथियों का उन सम्बन्धियों का, उन स्थानों का दर्शन और संसर्ग करना चाहता है जिनका सम्पर्क उनके जीवन के प्रारम्भिक दौर में रहा था।

यह अवस्था पति के लिये उतनी आरामदायक नहीं होती जितनी पत्नि के लिये होती है; क्योंकि एक तो वह स्वयं ही मानसिक तनाव से परेशान रहती है, जिस पर जब पति की ऐसी अवस्था या रुचि देखती है तब उसे भी इसे संभालना पडता है। यह सोचकर कि पहला जीवन तो जैसा बीता—बीत गया लेकिन बुढ़ापे की इस वेला में यह महोदय (पति देवता) कोई ऐसा कार्य न कर बैठें जो बच्चों के लिये दुखदाई सिद्ध हो और जग में हंसाई का कारण बने। ऐसी अवस्था में जब एक कुढ़न या घुटन उसके हृदय को प्रताड़ित करती है, तब उसका मानसिक तनाव और भी बढ़ सकता है और वह तनाव कभी जीवन के लिये घातक तक बन जाता है।

यह सब कुछ लिखने का आशय यह नहीं है कि इस अवस्था में आकर पति-पत्नि एक दूसरे से विरक्ति की स्थिति में पहुंच जाते हैं या विरक्ति की भावना स्वतः ही उनके दिल में उभर आती है। वस्तुतः स्थिति इसके विपरीत होती है। इस स्थिति में आकर तो दोनों एक दूसरे की आवश्यकता और भी

अधिक अनुभव करते हैं। दोनों का जीवन, सुख–दुख पूर्णतः एक दूसरे पर आश्रित हो जाता है। जो सेवा एक पति अपनी पत्नी की बीमारी में कर सकता है या करता है, वैसी सेवा सुयोग्य से सुयोग्य पुत्र भी नहीं कर सकता। इसी प्रकार ऐसी स्थिति में जो पत्नि पति की कर सकती है, पुत्र या पुत्री नहीं कर सकते। पत्नि को इस अवस्था में भी पति का निरन्तर ध्यान रहता है। खीझते, चिड़ चिढ़ाते और बड़ बड़ाते हुए भी उसके अन्तःकरण में पति का ध्यान रहता है। भारत का बदनसीब पति क्या इस देश की धर्म परायण नारी के हृदय की थाह क्या कभी पा सके जो अपनी मांग के सिन्दूर के पूछने से पहले अपने जीवन की समाप्ति की अभिलाषा करती है। जो पति के दुख को देख कर भगवान से वह दुख अपने लिये माँगती है। गांधारी ने अन्धे पति धृतराष्ट्र को देख कर अपनी आँखों पर पट्टी बाँध ली थी—जीवन भर के लिये। यदि ऐसे उदाहरणों को सतयुगी मानकर सन्देहशील भी कह दिया जाता है, तब आधुनिक काल में सती-प्रथा तो अब तक रही है। यह है भारत की नारी का गौरवमय इतिहास जो अपने मानसिक तनाव में स्वयं टूट जाती है; किन्तु अपने को तोड़ने वाले पति का अहित फिर भी नहीं चाहती।

वाणी में मधुरता—

वाणी में मधुरता का आग्रह तो स्त्री–पुरुष–दोनों से समान रूप से किया जाता है। यह एक गुण है—मानवी गुण—इस गुण की आवश्यकता जीवन में प्रत्येक समय और प्रत्येक स्थान पर है। कौव्वे और कोयल में रंग का कोई अन्तर नहीं शरीर से भी दोनों पक्षी हैं। अन्तर केवल बोलने का है। एक की वाणी में मधुरता है, दूसरे की वाणी में कर्कशता है। अपनी मधुरता के कारण ही कोयल एक पक्षी मात्र होते हुए भी मनुष्यों में—साधारण मनुष्यों में ही नहीं, साहित्यिक और पढ़े-लिखे मनुष्यों में भी आदर पाती है। उसकी वाणी के उदाहरण दिये जाते हैं। उसे अनुकरणीय माना जाता है। इसलिये नारी को कोयल की भांति मृदुभाषिणी होना चाहिये। जो नारी मृदुभाषिणी होती

है, उनकी अनेकों आई हुई व्याधियां भी स्वतः ही समाप्त हो जाती हैं। सत्य तो यह है कि मृदुभाषिणी होना नारी का एक विशेष गुण है--एक अलंकार है। उसका यह गुण और अलंकर ही परिवार के परिप्रेक्ष्य में सार्थक होता है-व्याप्त है और अनेक पारिवारिक गुणों का सृजन भी करता है।

मृदु-व्यवहार का दायरा भी केवल मात्र पति तक ही निर्मित नहीं होना चाहिये, अपितु उसका विस्तार घरेलू कर्मचारियों से लगाकर सन्तान तक यथापूर्व होना चाहिये। ध्यान यह रखना चाहिये कि कर्मचारी गण जो तुम्हारे आश्रित है, बिल्कुल तुम्हारी सन्तान की भांति हैं। पति के प्रति मृदु—व्यवहार तो स्वार्थ-वश—निज लाभ या अपनी भी प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिये किया जा सकता है; किन्तु अन्यों के प्रति—मेरा आशय परिवार और नाते रिश्तेदारों से है—किया गया व्यवहार एक ईश्वर प्रदत्त गुण माना जाता है।

व्यवहार, व्यवहार है। वह नौकरों के प्रति हो या सन्तान के प्रति हो। रामायण के समस्त काण्डों में हम कहीं भी उनके व्यवहार में तिक्तता नहीं पाते; लेकिन सीता जी के व्यवहार में कई जगह तिक्तता आई है और उसी का परिणाम उन्हें भोगना भी पड़ा।

यह बात रामायण के पाठकों श्रोताओं और वाचकों के बारे में भी है। केवल उन क्षणों तक, जब तक की वह उसके पाठ का श्रवण करते है, तब तक तो ठीक; किन्तु उसके पश्चात सारी अच्छाइयां जो उनके मस्तिष्क में आई थी, काफूर हो जाती है ऐसा केवल इसलिए होता है कि उनकी आत्मा में सबलता नहीं आ पाती और मस्तिष्क की कुंठाऐं पवित्र निष्ठाओं पर हावी रहती हैं।

मृदुभाषणी होने का सबसे प्रबल प्रभाव सन्तान पर पड़ता है; क्योंकि कटुता भरे शब्द उनके हृदय को झक झोर कर कलुषित कर देती है एवं भय-कभी-कभी एक रोग तक के रूप में उनमें पैदा हो जाता है। यदि ऐसा न भी हो तो वह भी उसी कर्कशता के सुनने से पहले आदी बनते है और फिर

उनको भी वही आदत बन जाती है। उनकी यह बुरी आदत उनके निजी जीवन के लिये तो कष्टदायक होती, जिसके कारण अनेकों कठिनाइयां और झंझट तथा शत्रुओं को वह इकटठा कर लेते हैं, उसके बाद नंबर आता है, उन मात–पिताओं का जिन्होंने उन्हें कर्कश वाणी सिखाई थी या जिससे उन्होंने सीखी थी। अन्दाज लगाइये कि उस समय माता–पिता की क्या स्थिति होती होगी, जब उनका युवक लड़का या लड़की कर्कश या झुंझलाहट भरे शब्दों में उनसे बात करे। अतः प्रत्येक नारी का यह परम कर्तव्य हो जाता है कि जीवन को सुखी बनाने के लिये वह मृदुभाषिणी बने। मृदुभाषा का प्रवाह ही ऐसा प्रवाह होता है जो गर्म लोहे को शीतल छेनी की तरह काट देता है। जो पाषाण से पाषाण हृदय वाले आततायी के हृदय में भी दया का संचार कर देता है। जो एक अत्याचारी तक के निर्णय को बदल देता है। महात्मा गांधी एक राजनीतिक नेता होते हुए भी मृदुभाषा का व्यवहार सदा करते थे। इसीलिये क्रूर गोरे शासक भी उनके शरीर पर अत्याचार करते हिचकते थे।

वाणी पर संयम यदि कोई नारी कर लेती है तब समझा यह जाना चाहिये कि वह एक सिद्धि की प्राप्ति कर लेती है; क्योंकि "संयम" शब्द अत्यन्त व्यापक है–महान् है। इसका प्रयोग वाणी पर हो या शरीर की अन्य इन्द्रियों पर मनुष्य को मनुष्यत्व से ऊपर उठाता है। स्वयं की सहायता की ओर ले जाता है तथा परिवार के जीवन के लिये सुखों का कारण बनता हैं। एक चिड़-चिड़े और झगड़ालू माता–पिता की सन्तान उन माता–पिताओं की सन्तानों की अपेक्षा अत्यन्त निर्बल चरित्र की होती है, जिनके माता पिता मृदुभाषी होते हैं। तब मानसिक तनाव के समय तो इस ओर विशेष ध्यान देना चाहिये।

—o—

बच्चों को दण्ड

हम बात-बात पर बच्चों को डराते, धमकाते और मारते हैं। छोटी-छोटी बातों के लिये हम उनका अपमान करते हैं, उन्हें झिड़कते हैं-फटकारते हैं। इतना ही नहीं उन्हें मूर्ख, बुद्ध, भोंदू, उल्लू गधा आदि अनुचित विशेषणों-उपाधियों से भी विभूषित करते हैं। ऐसा करना हमारा स्वभाव सा बन गया है। यह हमारा नित्य प्रति का व्यवहार सा हो गया है। उसमें हम कुछ बुरा भी नहीं मानते हैं। इसके कई कारण हैं।

बालक लड़ते-झगड़ते हैं। वस्तुओं को तोड़ते फोड़ते हैं, उधम मचाते हैं और हमारे कार्यों में विघ्न डालते हैं। बस इन्हीं बातों के लिये हम उन्हें डराते धमकाते और मारते हैं। प्रत्येक कार्य का कोई न कोई कारण अवश्य हुआ करता हैं। इस बात को जानते हुए भी हम बच्चों के इस प्रकार के कार्यों के कारणों को ढूंढना नहीं चाहते। ढूंढे भी तो कैसे और कहां, प्रथम तो बच्चों के उधम मचाने और चीजों के तोड़ने फोड़ने का हमें ठीक-ठीक ज्ञान ही नहीं हो पाता। दूसरे अगर ज्ञान हो भी, तो उनके कारणों की खोज के लिये हमारे पास समय और धैर्य का बिल्कुल अभाव सा ही रहता है। हम कारण की अज्ञानता और जल्दबाजी में ही बच्चों को दंड दे बैठते हैं। यदि उनके कार्यों के लिए उन्हें तुरन्त मजा चखाने के बजाय उन पर ठंडे दिल से कुछ देर विचार कर लें और उनके कारणों का पता लगा लें, तो बच्चों को दंड देने की नौबत ही न आये।

हम बच्चों की प्रत्येक क्रिया को—उठने, बैठने, चलने, खिलने, बोलने,

खाने, ओढ़ने, पहनने, हँसने आदि को एक ही मापदंड से मापते हैं। उनकी रूचि, शक्ति, योग्यता, व्यक्तित्व आदि का हम कुछ विचार नहीं करते। उनकी सब क्रियाओं को हम अपने ही मापदंड से मापते हैं, जो क्रियाएँ हमारे मापदंड से नहीं मापी जा सकती–उनसे छोटी या बड़ी उतरती हैं–वे हमारे लिये मान्य नहीं होती उन क्रियाओं के करने वाले को हम दोषी समझते हैं और उन्हें दंड भी दे बैठते है।

बाबा आदम के जमाने से हमारी आंखे एक ही प्रकार के रूप रंग देखने और हमारे कान एक ही प्रकार के शब्द सुनने के आदी हो गए हैं। परिणाम स्वरूप हम उन्हीं को देखने–दिखाने और सुनने सुनाने के अभ्यस्त हो गए हैं। उनके अतिरिक्त दूसरे रूप रंगों तथा शब्दों को न तो हम पसन्द करते हैं और न पसन्द करने की आवश्यकता ही समझते हैं। यदि हमारे चिर निर्मित दृष्टि पथ से होकर कोई नया रूप रंग गुजरता है अथवा कर्ण कुहर के रूढ़िग्रस्त सांचे से बाहर का शब्द हमें सुन पड़ता है तो एकदम हमारी आंखे चढ़ जाती हैं, हमारे कान खड़े हो जाते है और हम नाक भौं–सिकोड़ने लगते है। इतना ही नहीं, हमारे मस्तिष्क का पारा चढ जाता है। हम अपनी आंखों तथा कानों को अच्छे न लगने वाले रूप–रंगो, दृश्यों, पदार्थों और शब्दों को सहन नहीं कर पाते। नेत्रों जिह्वा हाथ आदि के द्वारा उनकी प्रतिक्रिया के लिये तैयार हो जाते है। हमारी आवेशपूर्ण वाणी, क्रोध से तमतमाता हुआ चेहरा, मार आदि उसी प्रतिक्रिया के प्रतिबिम्ब है–उसी के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

बच्चे हमारे हैं। उन पर हमारा अधिकार है। ये दोनों बाते भी कभी-कभी बच्चों को दंड देने में हमारी सहायक होती हैं। हम यही चाहते है कि वे हमारी आज्ञा के अनुसार चलें, हमारे अधीन रहें और हमसे कभी बाहर न हो। जहां कहीं हम अपनी इस इच्छा की पूर्ति होते नहीं देखते, वहीं बेचारे भोले-भाले निर्दोष बालकों को बागी या उद्दंड मान बैठते है और उन्हें चोरों लुटेरों तथा अत्याचारियों जैसा दंड देने पर उतारू हो जाते है।

हम जानते है कि बालक छोटे हैं। उनमें शक्ति कम है वे हमारा कुछ नहीं कर सकते है। इस लिये हम निर्भय होकर उन्हें डराते, धमकाते, अप-

मानित करते और मारते है। हम बालकों को 'अनुचित' शब्द बोलने या अपनी आज्ञा के विपरीत क्रिया करने पर दण्ड देते है। परन्तु क्या कभी अपने बराबर वालों या बड़ों से वैसा ही बोलने या कार्य करने पर उनके साथ भी वैसा ही व्यवहार करते हैं। उन्हें भी वही दण्ड देते हैं? यदि नहीं, तो क्यों? क्या इसीलिये न कि बराबर वाले या बड़े हमसे बदला ले सकते है और बालकों में इतनी सामर्थ्य नहीं? बच्चों की तरफ से होने वाली बदले की भावना की आशंका ही हमसे उन्हें दण्डित कराती है।

बालक को दुनिया में आये अभी थोड़े दिन हुए है। उसे दुनिया का अनुभव कम है। उसका शरीर छोटा हैं, उसमें शक्ति कम है। उसका जीवन हमारे अधीन है वह हमें छोड़कर कही जा नहीं सकता। हम दुनिया में पहले आए हैं। दुनिया का हमें अधिक अनुभव हैं। हमारा शरीर बड़ा है। हममें शक्ति अधिक है। हम अपने आधार पर जीवित है। हम इधर उधर घूमने फिरने में स्वतन्त्र हैं। हमारा यह अनुचित गर्व भी हमें बच्चों को दंड देने के लिये प्रेरित करता है और उनके दंड का कारण बनता है।

हम जानते है कि आत्मा अनन्त बलशाली है। उसकी शक्ति अक्षुण्ण है। वह शुद्ध, सत्य सनातन है। हममें और बालक मे वही आत्मा समान रूप से विद्यमान है। यह बात भी हमसे छिपी नहीं है कि बालक की आत्मा हमारी अपेक्षा विशेष शुद्ध, निर्मल और उच्च भावनाओं से पूर्ण है। इन सब बातों को जानते हुए भी हमने इन्हें व्यवहार में लाना नहीं सीखा है। यही कारण है कि हम बच्चों में अविश्वास रखते है और उनके प्रत्येक कार्य को शंका की दृष्टि से देखते हैं। हमारा यह अविश्वास भी उन्हे दंडित करने मे सहायक सिद्ध होता हैं।

इनके अतिरिक्त दो बाते और है। जिनके कारण बच्चों को दंड दिया जाता है। एक है हमारी मनुष्य के विकृत स्वभाव की 'परपीड़न वृत्ति' और दूसरी प्राचीन काल से चली आती हुई दंड परम्परा। दूसरों को सताने में कष्ट पहुंचाने में और उनके कार्यों में बाधा डालने में हमें मजा आता है उनका

कारण हमारी पर पीड़न वृत्ति है। यही पर-पीड़न वृत्ति हमसे बच्चों को दंड दिलवाती है। इसके समान ही हानिकार हमारी परम्परागत दंड़-प्रथा भी है। हम ऐसा मानते रहे हैं कि दंड़ मनुष्य को सुधारता है और उसे उचित मार्ग पर लाता है यही कारण है कि हमारे धर्मशास्त्र, राजनियम शिक्षा प्रणाली आदि में सुधार के लिये सर्वत्र दंड़ का विधान है। इसी विधान के फल स्वरूप हमारे पूर्व-पुरुष दंड़ित होते चले आये है। उन्होंने हमें दंड़ दिया है और हम अपने बच्चों को दंड़ दे रहे हैं। इस प्रकार अपने बच्चों को दंड़ देकर हम दंड़ की इस अन्ध परम्परा का प्रचार ही नही कर रहे, वरन् भविष्य के लिए भी इसकी जड़ मजबूत कर रहे हैं।

यदि हम अपने बच्चों को भय से मुक्त करना चाहते हैं उन्हें वीर तथा साहसी बनाने की इच्छा रखते हैं और अपने भावी समाज को स्वतन्त्र तथा शक्तिशाली देखना चाहते है और यदि हमें गुलामी को दूर भगाना इष्ट हैं, तो हमें चाहिये कि हम बालकों का सम्मान करें, उनके कार्यों को निरर्थक न समझें, उनकी योग्यता तथा शक्ति आदि में विश्वास रखें और अपनी दृष्टि एवं श्रवण-शक्ति को रूढ़ि के दासत्व से दूर रखकर व्यापक बनायें। बच्चों में अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व हैं, इसका ध्यान रखते हुए हम उनके ऊपर अपना प्रतिबिम्ब डालने का प्रयत्न न करें। बस इसी में हमारा और बालकों का कल्याण है।

कुण्ठाओं और निष्ठाओं का संघर्ष

नारी जीवन में कभी-कभी विषमतर स्थितियां पैदा हो जाती हैं और परिस्थितियों के कारण मानवीय निष्ठाओं और परिस्थिति जनित कुण्ठाओं मे संघर्ष छिड़ जाता है। यदि निष्ठाओं पर कुण्ठाएं हावी हो जाती हैं, तब एक ही नारी मस्तिष्क समूचे परिवार के लिये कलंक अथवा पतन का कारण बन जाता है। यदि निष्ठाएं कुण्ठाओं से परास्त नहीं होती तब वही मस्तिष्क, परिवार ही नहीं, समाज और कभी-कभी देश के लिये भी महान–हितकर सिद्ध होता है। इतिहास की कड़ियां उक्त कथन की साक्षी हैं जब नि नारी—मस्तिष्क से देश को महान लाभ पहुंचा है। अतः यह आवश्यक है कि जीवन में जो मानवीय निष्ठाएं निर्धारित की गयी हैं, उनको निर्बल न होने दिया जाय।

देखा यह जाता है कि जीवन मे व्यापार कुण्ठाओं को बहुत सी नारियां दबा तो लेती हैं, परन्तु मस्तिष्क मे वह उसे तिरोहित करने में असमर्थ होती है। इसे युग का प्रवाह कहिये या शिक्षा की कमी, किन्तु होता यही है। उन दबी कुण्ठाओं को लेकर वह प्रतिकार की भावना में ग्रस्त हो जाती है। जब भी—कभी भी ऐसा अवसर मिलता है वह कुण्ठाएं मस्तिष्क पर व्याप्त जाती है। ऐसे उदाहरण हमारे देखने में बहुत आये जब कि एक नारी दिखावे के तौर पर अपनी निष्ठाओं का विज्ञापन अपने आचरण से-पति या परिवार के सम्मुख करती है, किन्तु अन्तर में कुण्ठाओं के झंझावातों से ग्रसित रहती है और वह झंझावात कभी भी बढ़कर एक भयानक तूफान का कारण बन जाते हैं।

यह समझिये कि एक विवाहिता अपने पति की कुछ कमियों से परिचित है। उन कमियों के कारण मानवीय निष्ठाएं शिथिल हो जाती हैं और कुण्ठाएं बढ़ जाती हैं। उस समय नारी मस्तिष्क की स्थिति बड़ी विचित्र हो जाती है। यदि वह अपनी कुंठाओं को किसी कारण दवा बैठती है, तब उसका मस्तिष्क विकृत तक हो जाता हे यदि वह उन्हें समाप्त कर देती है, तव इतनी महानता देश की नारियों में वर्तमान नहीं है। उस समय होता यह है कि उन कुंठाओं पर आदर्श का आवरण डाल दिया जाता है। उस आवरण में कुंठाएं समाप्त तो अवश्य ही नहीं होती, ढक अवश्य जाती हैं। वह ढकी हुई कुंठाएं ही यदा कदा जीवन में झाँकना शुरू कर देती हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि उनके मन में पति के प्रति प्रतिकार की भावना का अन्त नहीं हुआ।

हमारे देश–भारत में तो अब भी नारी जीवन में निष्ठाओं को कुछ स्थान है, लेकिन पश्चिमी संसार–यूरोप और अमेरिका में तो नारियों ने मानवीय निष्ठाओं को पूर्णतः समाप्त कर दिया है। यूरोप और अमेरिका की महान महिलाओं ने जो महान आन्दोलन छेड़ रखा है, उसमें उनकी मांग यह है कि एक स्त्री का विवाह पुरूष से नहीं होना चाहिये। उन्हे पति शब्द से भी चिढ़ है और इस शब्द में भी उसे दासता की गन्ध आती है। वे पूर्ण स्वतन्त्रता जीवन की पूर्ण स्वतन्त्रता चाहती हैं। इस स्वतन्त्रता का अर्थ कोई भी मनीषी यही लगायेगा कि वो पशुवाद, पशु बनने के लिये लालायित हैं।

वस्तुतः यह भी कुंठाओं का झंझावात हैं। उनके जीवन से निष्ठाएं समाप्त हो चुकी हैं, कुन्ठाओं ने उनका स्थान ले लिया है। यह कुंठाए उन्हें कहीं भी ले जा सकती हैं–अमेरिका को कहीं भी ले जा सकती हैं।

कहने का तात्पर्य है कि मानवीय निष्ठाओं की जो नारी जीवन की आधार भित्तियाँ हैं, उन्हें कभी भी शिथिल नहीं होने देना चाहिये। उन्हें दवाने की अपेक्षा समाप्त करना श्रेयस्कर है। अपने आदर्शों का त्याग एक महान नारी कभी नहीं कर सकती, जो करती है उन्हें हम नारी नहीं मानते।

कुंठाओं के विविध रूप

जीवन में आने वाली कुंठाओं के रूप भी विविध होते हैं। यह इसलिये कि इनकी उत्पत्ति विभिन्न कारणों से होती है। उदाहरण के लिए पारस्परिक असमानताओं के हुए भी, दो परिवारों में वैवाहिक सम्बन्धों का होना, पति-पत्नि में शिक्षा के धरातल में अन्तर का होना अथवा शारीरिक [illegible] या आय की असमानता। रुचियों असन्तुलनता ऐसे बहुत से कारण जीवन में कुंठाओं को जन्म दे देते है जो निष्ठाओं को समाप्त कर देती है। अतः इन सभी परिस्थितियों को अपने अनुकूल बनाने के लिये कुंठाओं का दमन उसी तरह आवश्यक है जिस प्रकार शत्रुओं का दमन आवश्यक होता है। शासक यहां मन है—मस्तिष्क है। अतः शासक का कर्तव्य ही इन [illegible] का दमन है। बिना दमन के जिस तरह राज्य या समाज में शांति [illegible] उसी प्रकार शरीर में इनके दमन के बिना शांति स्थापित नहीं हो सकती।



बदलता मौसम बदलती हवा :—

संसार के भारी वर्ग में अर्थात अमेरिका और एशिया दोनों वर्गों में
वतन्त्रा के लिये जो एक नया आन्दोलन चला है वह बड़ा विचित्र हैं।

निश्चय ही उनके यह आन्दोलन या आन्तरिक विचार धारा मानसिक
ंठाओं पर आधारित है, जिनका जन्म सदियों पहले इनके मनों में हो चुका
ा। मूलत: इनका जो नारी-आन्दोलन है वह विलक्षण इस रूप में हैं कि
रोप की नारी धीरे-धीरे पुरूषों की नकल करके पुरूष बनना चाहती हैं,
सका प्रमाण उसकी वेशभूषा और चलने फिरने के ढंग में नहीं अपितु कार्य
द्धति में हैं। पश्चिम की स्त्री ने पुरूष के प्रतिविद्रोह पुरूष बनकर ही करने
ा निश्चय किया है, दूसरे शब्दों में पश्चिमी नारी पुरूष होने की दौड़ में पड़
ई हैं और उस दौड़ को वह अपनी क्राँति की संज्ञा देती है।

उन्हीं की हवा धीरे धीरे भारतीय नारीयों को भी लग रही है, वह दिन
र नहीं जब भारतीय नारी इनका अन्धानुकरण करने लगेगी। भारत में
रूप पश्चिम के पुरूप के पीछे जब दौड़ना पसन्द करता है तब यदि उसकी
त्री मां यूरोप की स्त्रीयों के पीछे दौड़ने का प्रयत्न करें तो इसमें आश्चर्य क्या
? इस स्वतन्त्रा की अदभुत दौड़ में नारी समाज को यह पता नहीं कि जिस
ौड़ में तू दौड़ रही है वह उसे खाई में पटकने वाला है।

इन्ही विचारों के कारण योरूप के परिवारिय घर आजकल परिवारिक
र न रहकर एक होटल सदृशय बन चुके हैं। यदि यही स्थिति रही तो शायद

भारतीय नारियों पर पूर्वकाल में विदेशी नारियों की छाप क्यों नहीं पड़ी थी। इन दिनों प्रश्नों में एक कारण राजनैतिक है, दूसरा कारण धार्मिक पहले धार्मिक कारण का ही विश्लेषण यदि हम करें तो ज्ञात होगा कि अनादिकाल से भारत प्रबल धर्म प्राण देश रहा है। यातायात की सुविधायें सुगम न होने पर भी भारत के धर्माचार्य धर्म प्रचार के लिए परवर्ती देशों में जाते रहे हैं। वहाँ पर इन साधु महात्माओं का सत्कार इनके वाणी और उपदेशों के कारण भगवान की भांति होता था, उन देशो के स्त्री और पुरुष इन साधु महात्माओं के वाक्यों का केवल श्रवण ही नहीं करते थे, अपितु उनको जीवन में भी धारण करते थे। भारतीय ज्ञान का प्रवाह रामायण काल से लगाकर बौद्ध काल में होता हुआ, ईसा के पश्चात छटी और सातवीं शताब्दी तक अबावगति से चलता रहा। इन कालों में ही विभिन्न देशों में रामायण, महाभारत आदि ग्रन्थों के साथ साथ बौद्ध ग्रन्थों का भी समावेश इन देशों में हुआ।

हमारे धर्म प्रचार को और धर्म ग्रन्थों की जो सामाजिक विचार धारा थी वह अत्यन्त निर्मल विचार धारा थी जिसमें कटुता, द्वेष, अथवा हिंसा का कोई स्थान नहीं था इस भारतीय विचार धारा में नारी वर्ग और पुरुष वर्ग के कर्तव्यों का निर्धारण समुचित ढंग से किया गया था, अतः इस विचार धारा का प्रवाह, परवर्ती देशों में व्यापक रूप से पड़ा, और अब भी इसके अवशेष उन लोगों के सामाजिक जीवन में यत्र तत्र पाये जाते हैं।

इस विचार धारा के कारण ही समस्त एशिया की नारी जाति इतनी उच्छृंखल बन सकी जितनी यूरोप देशों की नारियां है। उन की विचार धारा की तुलना अब भी भारतीय नारियों की विचार धारा से की जा सकती है, कालान्तर में उनके रीति रिवाज पतिव्रत धर्म में उनकी आस्था बिल्कुल भारतीय नारियों सरीखी थी। भारत में यदि पतिव्रत धर्म को आधार बना कर सतीप्रथा का प्राधान्य था, तो पूर्वी एशिया व पश्चिमी एशिया में भी उसका रूप वैसा ही था। अल्ताई की पहाड़ियों में जो खुलाव जाति की कब्रें मिली हैं; उन में स्त्री व पुरुष एक ही कब्र में पाये गये है। यही स्थिति मिश्र

और आराम राज्य (वर्तमान सीरिया) में भी थी। इसका स्पष्ट प्रमाण यह है कि इन सभी देशों पर भारतीय सभ्यता व विचार धारा की स्पष्ट छाप थी।

और उन देशों में पश्चिमी सभ्यता की विचार धारा के वावजूद स्थिति मे इतना परिवर्तन नहीं आया जितना कि भारत में आ चुका है।

भारत में इस परिवर्तन का मूल कारण विदेशों से चौहदवीं सदी तक निरन्तर सम्पर्क का रहना है। भारतीय सभ्यता की यह छाप योरूप मे ईरानीयों को प्रभावित करने के वाद यूनान और रोम तक अवाध रूप से वढ़ती चली गई ग्रीक, पुराण और ईसाई धर्म के कस्तूरी साधुओं के उपदेश हमारे कथन की पुष्टि करते है।

रोम में ईसाई धर्म से पहले कितने भी सामाजिक संस्कार थे उनकी तुलना भारतीय संस्कारों से इतिहासकारों ने की है। ईसा से ४ सदी पूर्व यूनान के प्रसिद्ध इतिहासकार हेरोडेटस ने अपनी पुस्तक में स्कन्दनाद अर्थात जर्मनी, स्वीडन व वर्तमान नार्वे का जो सामाजिक है, उससे स्पष्ट है कि वहां की नारी जाति का आचार व्यवहार भारतीय नारीयों के सदृश्य था हेरोडेटस ने उन यूरोपियन नारियों को भारतीय नारियो की भांति ईश्वर में विश्वास रखने वाली व पति सेवा करने वाली लिखा है।

यहां प्रश्न यह उठता है कि क्या यूरोपियन नारी सदा से ही उच्छृंखल जीवन की आदि रही है। दूसरे शब्दों मे उसे स्वतंत्रता प्रिय की लत क्या पहले से ही लगी हुई थी ? क्या ईसाई धर्म ने उस पर कर्तव्य की छाप अंकित नहीं की ?

यह कुछ प्रश्न ऐसे है, जिनका सम्बन्ध धार्मिक या सामाजिक न होकर राजनितिक अधिक है। वस्तुत: यूरोप की नारी जातियां लड़ाका रही है। ईसा से पूर्व और ईसा के पश्चात भी यूरोपियन लोग किसी न किसी प्रकार

के लड़ाई झगड़ों में फंसे ही रहे। कभी ईसाई सम्प्रदायों के युद्ध होते थे और कभी मुसलमानों के साथ धर्म युद्ध। उसके पश्चात यह जातियां एशिया और अफ्रीका में अपने उपनिवेश बसाने के लिये निकली। उपनिवेशों के इस अभियान में निश्चय ही उनके साथ उनकी पत्नियाँ नहीं होती थी—एकाकी पुरूप होते थे यह स्थिति केवल एक ग्रेट ब्रिट्रेन, फ्रांस या जर्मनी की रही सो—ऐसी बात नहीं यह स्थिति यूरोप भर की थी और ये नेता जब दूसरे देशों में पहुंचते थे तब कठनाइयों भरे कठोर जीवन के आदि हो जाते थे और इधर घर की स्त्रियां स्वतंत्र हो जाती थी। इस स्थिति के कारण यूरोप के मानस के हृदय से परिवार या घर का महत्व शिथिल होता चला गया और जब परिवार या घर का महत्व शिथिल हुआ तो पत्नी का महत्व करना अनिवार्य ही था। अतः यूरोपियन पुरूप के हृदय से जब पत्नि का महत्व शिथिल हुआ तो पत्नी के हृदय से पतिव्रत-धर्म विदा होना ही था।

इसके बाद दो युद्धों—१९१४ और १९३९—ने यूरोप के सारे सामाजिक ढाचें को ही गिरा दिया। जीवन की और ढांचों की बात तो अलग रही. उनके सामाजिक ढांचे ने उन्हे बिल्कुल निरीह कर डाला। इन दो युद्धों मे यूरोप के कई करोड़ व्यक्ति मारे गये। कई करोड़ महिलाओं को पति-विहीन तो होना पड़ा, करोड़ों युवतियों को पति मिलने दुर्लभ हो गये। फलतः समाज में अनाचार फैलना स्वभाविक था। नारी की अपनी विवशता के कारण और पुरूप को अपनी कामुकता के कारण समाज को कलंकित करना आरम्भ किया। फलतः नारी स्वतन्त्रता मान ली गयी। बहू हो या बेटी—पुरूप मित्रों से मिलना उनके साथ घूमना-फिरना यूरोप में एक फैशन ही नही नारी स्वतन्त्रता का प्रतीक मान लिया गया और इस प्रतीक को ही अब नारी ने और विस्तृत मानना शुरू कर दिया। एक ओर अपने स्वावलम्बन के लिये नारी नौकरी करती है—पुरूप की नौकरी दूसरे भी ऐसे ही काम करती है—जिन में नाटय क्लब जैसे घृणित कार्य भी शामिल हैं और दूसरी ओर बस पुरूप से स्वतन्त्रता चाहती है। पुरूष उनको खपाने में असमर्थ है, क्योंकि पुरुष

वर्ग में पुरूषों की जनसंख्या कम है और नारियों की अब भी बढ़ी हुई है। इसलिए उसे चुप्पी साधनी पड़ती है परन्तु भारतीय नारी उनका अनुकरण क्यों करती हैं ? यह आश्चर्य की बात है। क्या उनको खाई में गिरता देख हमें भी खाई में गिरना ही चाहिए ? यह प्रश्न विचारणीय है—पुरुषों के लिये भी और नारियों के लिये भी। क्या हम अपनी निष्ठाओं को उनकी कुंठाओं पर बलिदान करें।

❊ 卐 ❊